॥ श्रीहरि: ॥

1017

श्रीराम

गीताप्रेस, गोरखपुर

विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मण

गङ्गाजीके दक्षिणमें एक परम रमणीय वन था। उस वनमें सिद्धाश्रम नामक पवित्र आश्रम था। आश्रममें परम तपस्वी महामुनि विश्वामित्र अपने शिष्योंके साथ निवास करते थे। उसी आश्रमके सन्निकट ताड़का नामकी एक राक्षसी निवास करती थी। उसके दो पुत्र थे, जिनका नाम मारीच और सुबाहु था। वे परम बलवान् तथा मायावी थे। वहाँके ऋषि-मुनि जब यज्ञ करते थे, तब ये दोनों अपने साथी दुष्ट राक्षसोंके साथ पहुँचकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे और ऋषि-मुनियोंको नाना प्रकारसे भयभीत किया करते थे।

एक दिन महर्षि विश्वामित्रने विचार किया कि 'धरतीको राक्षसोंके अत्याचारसे मुक्त करनेके लिये श्रीहरिने महाराज दशरथके यहाँ श्रीरामरूपमें अवतार ले लिया है। मुझे शीघ्र ही वहाँ जाकर तथा अयोध्याके महाराज दशरथसे उन्हें माँगकर यहाँ ले आना चाहिये। वे ही यहाँके ऋषि-मुनियोंको राक्षसोंके भयसे मुक्ति दिलायेंगे तथा मेरे यज्ञको निर्विघ्न सम्पन्न करायेंगे।' इस विचारको कार्यरूप देनेके उद्देश्यसे महर्षि विश्वामित्र अयोध्या पहुँचे।

महाराज दशरथने भक्ति और आदरके साथ महर्षि विश्वामित्रका स्वागत किया, उन्हें उत्तम आसनपर बैठाकर उनके पाँव पखारा और कहा—'भगवन्! आपके आगमनसे हम धन्य हुए। हमारे लिये जो भी आदेश हो, आप निःसंकोच बतायें। आपका आगमन किस उद्देश्यसे हुआ है ? आप अपनी सेवाका अवसर देकर हमें कृतार्थ करें।'

महाराज दशरथके विनयसे विश्वामित्र परम प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'हम एक यज्ञ करना चाहते हैं। परन्तु मारीच और सुबाहु मेरे यज्ञ-कुण्डमें मांस और रुधिरकी वर्षा करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, जिसके कारण मेरा यज्ञ पूरा नहीं हो पा रहा है। मारीच और सुबाहुको मैं शाप देकर भी भस्म कर सकता हूँ, पर ऐसा करनेसे मेरी तपस्या नष्ट हो जायगी। तुम उदार मनसे श्रीराम और लक्ष्मणको मेरे साथ भेज दो। वे उन राक्षसोंको मारकर मेरे यज्ञको पूरा करायेंगे। इस प्रकार मेरा यज्ञ भी पूर्ण हो जायगा और श्रीराम-लक्ष्मणका कल्याण भी होगा।'

महाराज दशरथने हाथ जोड़कर कहा—'महर्षि! श्रीराम-लक्ष्मण अभी बालक हैं। ये महलको छोड़कर कहीं बाहर पैर नहीं रखे हैं। इनको युद्धका कोई अनुभव भी नहीं है। भला ये उन राक्षसोंसे कैसे युद्ध करेंगे ? यदि आप आदेश दें तो मैं अयोध्याकी सेना लेकर आपके साथ स्वयं चल सकता हूँ। चौथेपनमें मैंने चार पुत्र प्राप्त किये हैं। फिर उनमें राम तो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। क्षमा कीजिये, मैं श्रीराम और लक्ष्मणको आपके साथ नहीं भेज सकता।'

विश्वामित्र अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कहा—'राजन्! तुम वचन देकर फिर रहे हो। तुम्हारे-जैसे ज्ञानीको बच्चोंके प्रति इतनी ममता नहीं रखनी चाहिये। यदि मैं आज भगवान् विष्णुसे कह देता तो वे भी वैकुण्ठ छोड़कर मेरी सहायताको आ जाते। शिवका आसन भी मेरे आदेशको सुनकर हिल जाता। मुझे पश्चात्ताप है कि मैंने हाथ पसारकर तुमसे कुछ माँगा। तुमने तो अपने कुलकी मर्यादा ही खण्डित कर दी। ठीक है, मैं वापस जाता हूँ।'

बात बिगड़ती देखकर कुल-पुरोहित वसिष्ठजीने किसी तरह महर्षि विश्वामित्रको समझाकर शान्त किया। उन्होंने महाराज दशरथसे कहा—'राजन्! विश्वामित्रजीका आदेश शिरोधार्य करनेमें ही तुम्हारा कल्याण है। इनके साथ निर्भय होकर तुम श्रीराम-लक्ष्मणको भेज दो। विश्वामित्रजी साक्षात् धर्म हैं। इस संसारमें विश्वामित्र-जैसा शस्त्रास्त्रोंका ज्ञाता और कोई नहीं है। राक्षसोंका संहार करना तो इनके बायें हाथका खेल है। ये देखते-ही-देखते संसारके सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार कर सकते हैं। फिर भी ये श्रीराम-लक्ष्मणको राक्षसोंके वधका श्रेय देना चाहते हैं।' गुरु वसिष्ठकी बात मानकर महाराज दशरथने श्रीराम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके साथ भेज दिया। पुरुषोंमें सिंह श्रीराम और लक्ष्मण सानन्द विश्वामित्रके साथ मुनियोंका भय हरण करनेके लिये चल पड़े।

[1017] 1/A

B.K.Mitra

ताड़का-संहार

श्रीराम और लक्ष्मणका मन बहलानेके लिये विश्वामित्रजी उन्हें विविध इतिहास और कथाएँ सुनाते जा रहे थे। रास्तेमें पड़नेवाले वन, उपवन, नदी तथा पहाड़ आदिको देखकर श्रीराम-लक्ष्मणको अनोखा आनन्द प्राप्त हो रहा था। जब श्रीविश्वामित्र छः कोसकी यात्रा पूरी कर सरयूके दक्षिणी तटपर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने श्रीरामको बला और अतिबला नामक विद्याका उपदेश किया। इस विद्याके प्रयोगसे मनुष्यको भूख-प्यास नहीं सताती तथा कोई राक्षस सोयी हुई अवस्थामें उसपर आक्रमण नहीं कर सकता। वह रात सरयूके तटपर बिताकर तीनों पथिक आगे बढ़े। जब श्रीराम और लक्ष्मण विश्वामित्रके साथ गङ्गाजीके दक्षिणी तटपर पहुँचे, तब रास्ता अत्यन्त दुर्गम हो गया। सिंह, व्याघ्र, सूकर आदि उस वनकी भयंकरताको और भी बढ़ा रहे थे। श्रीरामने विश्वामित्रजीसे पूछा—'प्रभो! इस भयंकर जंगलका क्या नाम है तथा इसका इतिहास क्या है?'

विश्वामित्रजीने कहा—'राम! इस भूखण्डमें बहुत दिनों पहले मलद और कुरुष नामके दो अत्यन्त ही समृद्ध जनपद थे। कालान्तरमें यहाँ ताड़का नामकी एक यक्षिणी अपने पति सुन्दके साथ आकर रहने लगी। उसके पास दस हजार हाथियोंका बल था। दोनों पति-पत्नी यहाँ स्वच्छन्द रहने लगे तथा यहाँके निवासी और मुनि उनके अत्याचारसे पीड़ित होकर इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले गये। अगस्त्य ऋषिके शापसे सुन्द भस्म हो गया और ताड़का राक्षसी हो गयी। मारीच और सुबाहु इसी ताड़काके पुत्र हैं। इन राक्षसोंके अत्याचारसे यह स्थान निर्जन पड़ा है। कोई भी इस रास्तेसे आनेकी हिम्मत नहीं करता है। यदि कोई आ भी जाता है तो ताड़का उसे मारकर खा जाती है। अब इस स्थानका नाम दण्डकारण्य है। तुम इस दुष्टा राक्षसीको मारकर इस स्थानको पवित्र करो। इसीलिये मैं तुम्हें इस घोर वनके रास्तेसे लाया हूँ।'

श्रीरामने कहा—'मुनिवर! भले ही ताड़का क्रूर और दुष्टा हो, परन्तु वह स्त्री है। एक स्त्रीको मारना रघुकुलकी मर्यादाके विरुद्ध है। मैं इसको मारकर स्त्री-वधका पाप भला कैसे कर सकता हूँ?'

विश्वामित्रजीने कहा—'श्रीराम! अत्याचारी व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, यदि वह अपना सुधार नहीं करता और जनताको पीड़ित करता है तो उसे मार डालना परम धर्म है। दुष्कर्मियोंकी उपेक्षा करना महान् पाप है। इसलिये तुम बिना शंका किये इस दुष्टाका संहार करो।' विश्वामित्रजीके आदेशका पालन करनेके लिये श्रीरामने अपना धनुष उठाया और जोरसे टंकार किया। धनुषकी टंकार सुनते ही ताड़का अपने निवाससे निकली। भय उसे छू तक नहीं सका था। वह बिजली-सी कड़कती हुई श्रीराम और विश्वामित्रकी ओर दौड़ी। उसके चारों ओर धूल उड़ रही थी। अत्यन्त क्रोधित होकर वह श्रीराम-लक्ष्मण और विश्वामित्रपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगी। श्रीराम और लक्ष्मण भी अपना धनुष-बाण लेकर उसके सामने आ डटे। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। अब ताड़काने माया-युद्ध प्रारम्भ किया। छिपकर उसने नाना प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारकी झड़ी लगा दी। श्रीरामने एक बाण चलाकर उसके अस्त्र-शस्त्रोंको बेकार कर दिया। युद्धमें विलम्ब होते देखकर विश्वामित्रने कहा—'श्रीराम! अब इसे मारनेमें देर मत करो। रात्रिमें राक्षसोंकी शक्ति अधिक बढ़ जाती है। फिर इसे मारना कठिन हो जायगा।'

श्रीरामने ताड़काको मार डालनेके उद्देश्यसे धनुषपर एक कराल बाणका संधान किया और ताड़काकी छातीको लक्ष्य करके चला दिया। उस बाणके लगते ही ताड़काकी छाती फट गयी और वह कटे वृक्षकी तरह पृथ्वीपर गिरकर मर गयी। देवगणोंने आकाशसे श्रीरामपर पुष्पोंकी वर्षा की। ताड़का-वधसे विश्वामित्रजी परम प्रसन्न हुए। चारों ओर श्रीरामकी जय-जयकार होने लगी।
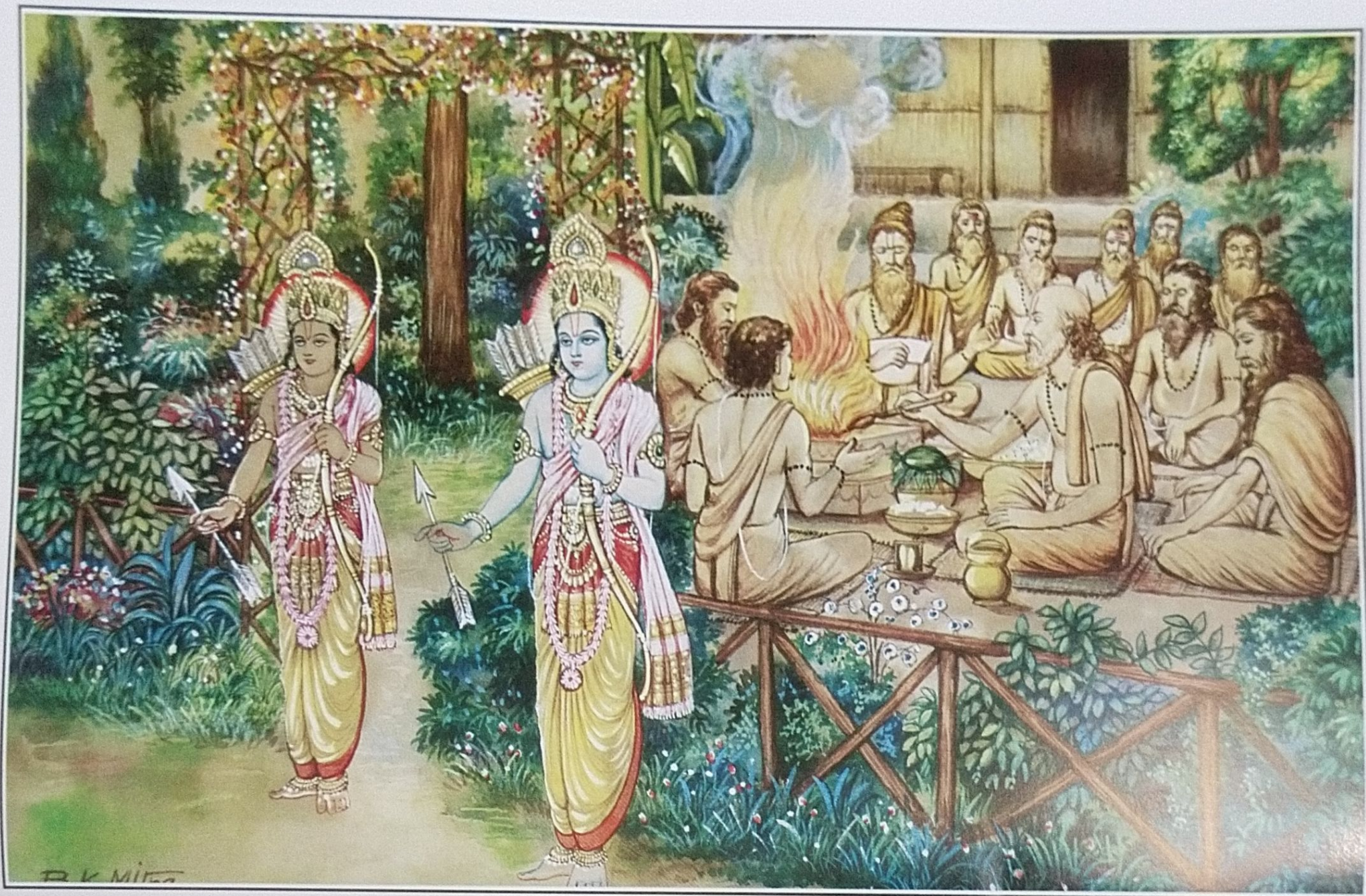
विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा

ताड़का-संहारके बाद श्रीविश्वामित्रको यह पूर्ण विश्वास हो गया कि श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। उन्होंने कहा—'श्रीराम! मैं तुमपर परम प्रसन्न हूँ। अब मैं अपनी अपूर्व तपस्याद्वारा प्राप्त समस्त दिव्यास्त्रोंकी विद्या तुम्हें प्रदान करता हूँ।' विश्वामित्रसे दिव्यास्त्रोंका ज्ञान प्राप्तकर श्रीराम-लक्ष्मण उनके पवित्र आश्रमपर पहुँचे।

विश्वामित्रजीने कहा—'श्रीराम! सिद्धाश्रमके नामसे प्रसिद्ध यही मेरा पवित्र आश्रम है। प्राचीन कालमें श्रीविष्णुने यहाँ तपस्या करके सिद्धि पायी थी, तभीसे इसका नाम सिद्धाश्रम पड़ा। यहींपर असुर-सम्राट् दानवीर बलिने अपना इतिहास-प्रसिद्ध यज्ञ किया था। भगवान् वामनने यहीं बलिसे तीनों लोकोंका दान लेकर उसे अपनी अनपायिनी भक्ति प्रदान की थी। इसलिये मैंने इस स्थानको परम पवित्र समझकर अपने आश्रमके लिये चुना है।'

इस प्रकार चर्चा करते हुए महर्षि विश्वामित्रने श्रीराम-लक्ष्मणके साथ अपने आश्रममें प्रवेश किया। सभी आश्रमवासी विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मणको आया देखकर परम प्रसन्न हुए। उन लोगोंने नवागन्तुक श्रीराम-लक्ष्मणका अर्घ्य-पाद्यसे भरपूर स्वागत किया। कुछ समय विश्रामके बाद श्रीरामने विश्वामित्रसे कहा—'महर्षि! आप आज ही यज्ञ प्रारम्भ कर दें। आप निश्चिन्त रहें, अब कोई भी राक्षस आपके यज्ञमें विघ्न नहीं डाल सकता है। हम दोनों पूरी सावधानीसे तत्पर होकर आपके यज्ञकी रक्षा करेंगे।'

आश्रमके अपने सहयोगी ऋषि-मुनियोंके साथ महर्षि विश्वामित्रने यज्ञ प्रारम्भ किया। पवित्र वेद-मन्त्रोंके उच्चारणसे धरती और आकाश गूँज उठे। चारों ओर यज्ञका पवित्र धूम्र फैल गया। दोनों राजकुमार छः दिनोंतक तपोवनकी रक्षा करते रहे। इस बीच इन्होंने एक क्षणके लिये भी विश्राम तक नहीं किया।

छठा दिन ही यज्ञकी पूर्णाहुतिका दिन था। श्रीराम-लक्ष्मण पूर्ण सावधान हो गये। उसी समय आकाशमें बड़े जोरका भयानक शब्द हुआ। वर्षाके मेघोंकी तरह मारीच और सुबाहु नामक राक्षस अपनी भयंकर राक्षसी सेनाके साथ अचानक आकाशमें प्रकट हुए। ताड़काके वधसे वे दोनों विशेष क्रोधित थे। श्रीराम-लक्ष्मणके साथ आज वे आश्रमके समस्त मुनि-समाजको नष्ट कर देना चाहते थे। अपनी मायासे उन्होंने आते ही आश्रममें रक्त बरसाना शुरू कर दिया।

रक्तसे आश्रमके आस-पासकी भूमिको भीगी देखकर श्रीराम अपना धनुष-बाण लेकर दौड़े। सहसा आकाशकी ओर दृष्टि पड़नेपर उन्होंने देखा कि मारीच और सुबाहु राक्षसी सेनाके साथ वहाँ खड़े होकर रक्तकी वर्षा कर रहे हैं। श्रीरामने तत्काल अपने धनुषपर मानवास्त्रका संधान किया। वह अस्त्र अत्यन्त तेजस्वी था। रोषमें भरकर श्रीरामने मारीचकी छातीको लक्ष्यकर मानवास्त्र चला दिया। उस अस्त्रकी चोटसे मारीच पूरे सौ योजन विस्तारवाले समुद्रके पार जा गिरा। फिर श्रीरामने आग्नेयास्त्रका संधानकर उसे सुबाहुकी ओर लक्ष्य करके छोड़ा। आग्नेयास्त्रके लगते ही सुबाहु मरकर पृथ्वीपर आ गिरा। उसके बाद उन्होंने वायव्यास्त्रके द्वारा सारी राक्षसी सेनाका संहार कर डाला।

इस प्रकार भगवान्ने सारे राक्षसोंका संहार करके विश्वामित्रके यज्ञको निर्विघ्न सम्पन्न करा दिया। आश्रमके ऋषियोंने दोनों राजकुमारोंका खूब सम्मान किया। विश्वामित्रने कहा—'महाबाहो श्रीराम! तुम्हें पाकर हम कृतार्थ हुए। तुमने सिद्धाश्रमका नाम सार्थक कर दिया और गुरुकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन किया।' इस प्रकार महामुनि विश्वामित्रने श्रीरामकी खूब प्रशंसा की। उसके बाद दोनों राजकुमारोंके साथ उन्होंने सायंकालीन सन्ध्या-वन्दन किया।
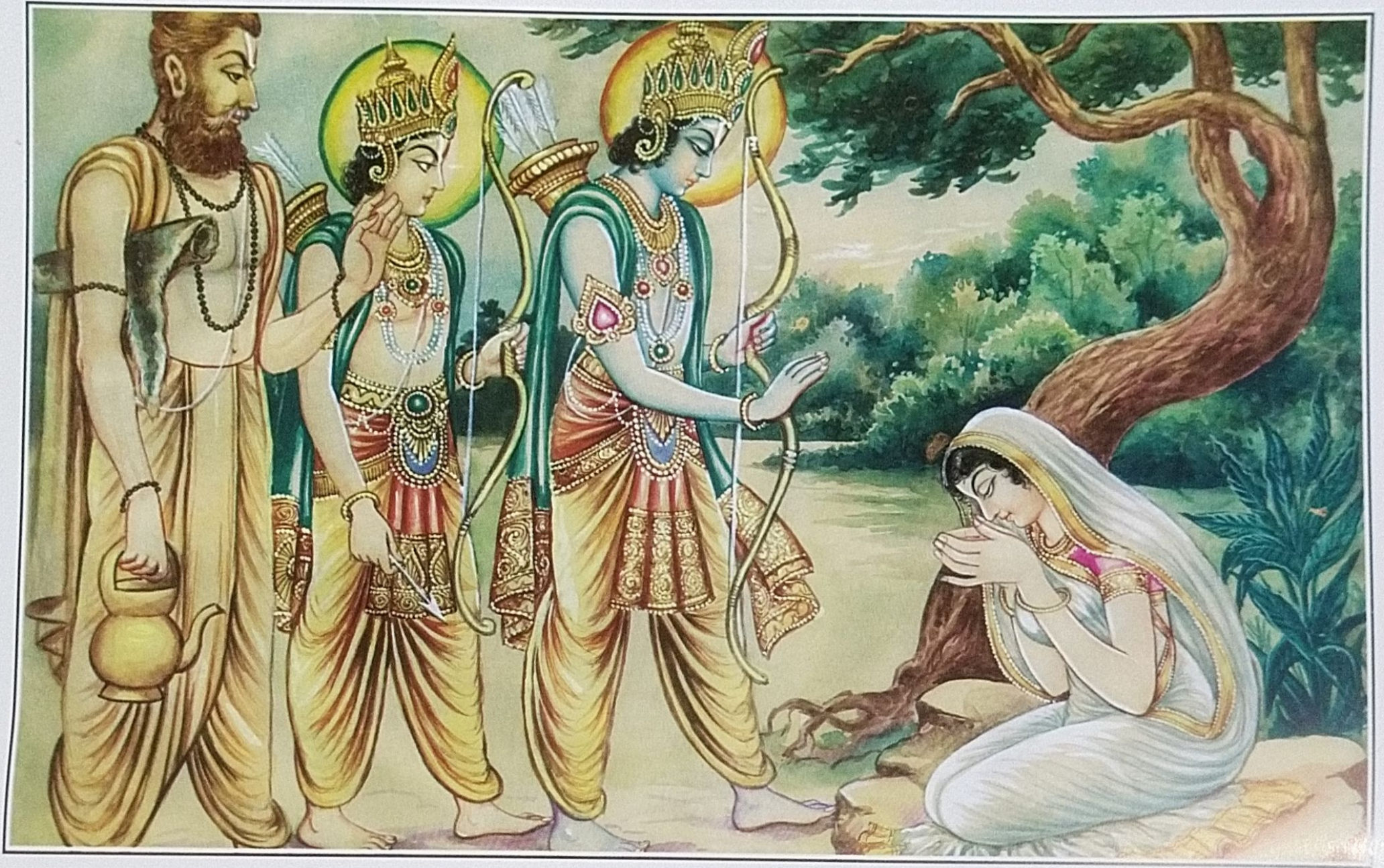
अहल्या-उद्धार

विश्वामित्रके आश्रममें यज्ञ-समाप्तिकी रात बीतनेके बाद प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीराम-लक्ष्मणने महामुनि विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर! हम दोनों आपकी सेवामें उपस्थित हैं। आज्ञा दीजिये, हमें अब आपकी क्या सेवा करनी है?' विश्वामित्र बोले—'श्रीराम! मिथिलाके राजा महाराज जनक धनुष-यज्ञ कर रहे हैं। तुम दोनोंको भी वहाँ मेरे साथ चलना है।' धनुष-यज्ञकी बात सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण परम प्रसन्न हुए। तदनन्तर विश्वामित्रने श्रीराम-लक्ष्मणके साथ मिथिलाके लिये प्रस्थान किया। रास्तेमें विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणको नाना प्रकारकी धार्मिक कथाएँ सुनाते जाते थे। दोनों राजकुमार रास्तेमें विश्वामित्रके सत्संगका आनन्द लेते हुए मिथिला पहुँचे।

मिथिलाके एक उपवनमें एक पुराना आश्रम था। वह आश्रम अत्यन्त सुन्दर होते हुए भी सुनसान दिखायी दे रहा था। उसे देखकर श्रीरामने विश्वामित्रसे कहा—'मुनिवर! यह कैसा स्थान है, जो देखनेमें आश्रम-जैसा है; किन्तु एक भी मुनि यहाँ दिखायी नहीं दे रहे हैं? कृपया मुझे इस आश्रमका इतिहास बताइये।'

विश्वामित्रने कहा—'श्रीराम! पूर्वकालमें महर्षि गौतम इस आश्रममें रहकर तपस्या करते थे। एक दिन महर्षि गौतम आश्रमपर नहीं थे। इन्द्रने महामुनि गौतमका वेष धारणकर छलपूर्वक उनकी पत्नी अहल्याका सतीत्व नष्ट कर दिया। इन्द्र जब अहल्याको पथभ्रष्ट करके कुटीसे बाहर निकले, उसी समय गौतम ऋषिने समिधा हाथमें लिये हुए अपने आश्रममें प्रवेश किया। गौतम ऋषिपर दृष्टि पड़ते ही इन्द्र भयसे थर्रा उठे। दुराचारी इन्द्रको अपने वेषमें देखकर गौतम ऋषि इन्द्रका कुकर्म समझ गये। उन्होंने इन्द्रको शाप देते हुए कहा—'दुष्ट! तूने मेरा रूप धारणकर आश्रममें पापकर्म किया है। इसलिये तू अण्डकोषोंसे रहित हो जा।' इसके बाद उन्होंने अपनी पत्नीको शिला हो जानेका शाप देते हुए कहा—'दुराचारिणी! तू भी यहाँ कई हजार वर्षोंतक शिला बनकर पड़ी रहेगी। जब दशरथनन्दन श्रीराम इस वनमें आयेंगे, तब उनके चरण-रजसे तू पवित्र होगी। फिर तू प्रसन्नतापूर्वक अपना पूर्व-शरीर धारणकर मेरे पास आयेगी।' महातेजस्वी श्रीराम! तुम इस आश्रममें चलकर गौतमकी पत्नी अहल्याका उद्धार करो।

विश्वामित्रके आदेशसे भगवान् श्रीरामने गौतमके आश्रममें प्रवेश किया। उनके चरण-रजके प्रभावसे अहल्याको अपना पूर्व-शरीर प्राप्त हो गया। उसका शरीर दिव्य था। विधाताने बड़े ही प्रयत्नसे अहल्याका निर्माण किया था। श्रीरामके दर्शनसे उसका शाप समाप्त हो गया। अहल्याने श्रीरामकी भक्तिपूर्वक स्तुति की और पतिलोकको चली गयी।

अहल्या-उद्धारको देखकर देवताओंने अपनी दुन्दुभी बजायी और आकाशसे श्रीरामपर फूलोंकी वर्षा की। गन्धर्वों और अप्सराओंद्वारा महान् उत्सव मनाया जाने लगा। महर्षि गौतमकी पत्नी अहल्याके उद्धारके बाद सम्पूर्ण देवताओंने श्रीरामको साधुवाद देते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

उसके बाद श्रीराम-लक्ष्मणको साथ लेकर महामुनि विश्वामित्र जनकपुर पहुँचे। एक आमके बागीचेको उपयुक्त स्थान जानकर विश्वामित्रजीने वहाँ ठहरनेका निर्णय लिया। विश्वामित्रके आगमनका समाचार सुनकर महाराज जनक परम प्रसन्न हुए। वे अपने सभासदों तथा पुरोहित महामुनि शतानन्दके साथ विश्वामित्रजीसे मिलनेके लिये आये। श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर महाराज जनक विशेष प्रभावित हुए। उन्होंने विश्वामित्रजीसे दोनों राजकुमारोंका परिचय पूछा। महामुनि विश्वामित्रने अयोध्या-नरेश दशरथके पुत्रके रूपमें उनका परिचय देते हुए ताड़का-संहार, यज्ञ-रक्षा और अहल्या-उद्धारके प्रकरणसे श्रीरामके चरित्रका विस्तारसे वर्णन किया। भगवान् श्रीरामका परिचय जानकर जनकको विशेष प्रसन्नता हुई।

पुष्पवाटिकामें श्रीराम-लक्ष्मण

प्रातःकाल दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके आदेशसे महाराज जनककी फुलवारीमें पूजाके लिये फूल लेने गये। महाराज जनककी वाटिका अत्यन्त ही मनोहर थी। वहाँ नाना प्रकारके पुष्पोंके साथ फलदार वृक्ष भी लगे हुए थे। वाटिकाके मध्य भागमें एक सुन्दर सरोवर था, जिसकी सीढ़ियोंपर मणियाँ जड़ी हुई थीं। सरोवरके किनारे गौरीजीका एक अत्यन्त ही सुन्दर मन्दिर बना हुआ था। वाटिकामें भाँति-भाँतिके पुष्प खिले हुए थे तथा भ्रमर गुंजार कर रहे थे। भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण वाटिकाके रक्षकोंसे अनुमति लेकर गुरुदेवकी पूजाके लिये फूल चुनने लगे।

माता सुनयनाकी आज्ञासे उसी समय जनकनन्दिनी सीताने भी सखियोंके साथ गौरी-पूजनके लिये पुष्पवाटिकामें पदार्पण किया। सीताजीने सखियोंके साथ सरोवरमें स्नानके बाद भगवती गौरीका खूब अनुरागसहित पूजन किया तथा उनसे अपने ही अनुरूप सुन्दर वरकी याचना की।

सीताजीकी एक सखीने उनके साथ गौरी-पूजनमें भाग नहीं लिया, क्योंकि वह फुलवारी देखनेके लिये चली गयी थी। उसने वाटिकामें श्रीराम-लक्ष्मणको फूल चुनते हुए देखा। अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यके केन्द्र दोनों राजकुमारोंको देखकर वह प्रेमसे विह्वल हो गयी। उसके शरीरमें रोमाञ्च हो गया तथा आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक पड़े। उसकी बेसुध दशाको देखकर एक सखीने उसकी इस दशाका कारण पूछा, तो उसने कहा—'वाटिकामें पुष्प चुननेके लिये दो राजकुमार आये हुए हैं। उनके सौन्दर्यकी व्याख्या असम्भव है। मैं उन्हींके सौन्दर्य-सिन्धुमें डूबकर अपनी सुध-बुध खो चुकी हूँ। मेरी इस दशाका यही कारण है।'

दूसरी सखीने कहा—'लगता है ये वही राजकुमार हैं, जो कल महामुनि विश्वामित्रके साथ धनुष-यज्ञ देखनेके लिये आये हैं। इस समय नगरमें सर्वत्र उन्हीं राजकुमारोंके सौन्दर्यकी चर्चा हो रही है। उन्होंने अपनी अनुपम रूप-माधुरीसे नगरके समस्त नर-नारियोंको अपने वशमें कर लिया है। अतः उन्हें अवश्य देखना चाहिये।' सीताजीको उन सखियोंकी बातें अत्यन्त प्रिय लगीं। उनके मनमें अपने आराध्यके दर्शनकी लालसा तीव्र हो गयी। वे सखियोंके साथ श्रीरामकी ओर आगे बढ़ीं।

इधर सीताजीके कंगनों, करधनी तथा नूपुरोंसे निकली मधुर ध्वनिने श्रीरामके कानोंमें रस घोलना शुरू कर दिया। श्रीरामने इस ध्वनिको सुनकर जैसे ही एक कुञ्जकी तरफ देखा, वैसे ही उन्हें जनकनन्दिनी सीता अपनी सखियोंके साथ आती हुई दिखायी पड़ीं। सीताके सौन्दर्यको देखकर श्रीरामकी आँखें चकोर बनकर उनके रूप-सुधाका रसपान करने लगीं। क्षणभरके लिये दोनों तरफके नयन स्थिर हो गये।

भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! यही राजकुमारी जानकी हैं, जिनके लिये धनुष-यज्ञका आयोजन हो रहा है। रघुवंशियोंका यह सहज स्वभाव है कि वे भूलकर भी मर्यादाके विरुद्ध पैर नहीं रखते हैं, परन्तु आज मेरा पवित्र मन भी सीताकी ओर आकर्षित हो रहा है। इसका कारण विधाता ही जानते हैं।'

अचानक लतामण्डपमें राजकुमारी सीताको श्रीराम दिखायी दिये। उनकी पुरातन एवं परम पुनीत प्रीति उमड़ आयी। वे समझ गयीं कि यही मेरे आराध्य देव हैं। इस प्रकार पुष्पवाटिकामें श्रीसीता-रामका प्रथम मिलन हुआ। विलम्ब होता जानकर सीताजी पुनः गौरी-मन्दिरमें गयीं तथा उनकी दुबारा पूजा करके उनसे वर माँगा कि श्रीराम ही मेरे पति हों। सीताजीके विनय और प्रेमके वशीभूत होकर भगवती गिरिजाने उनकी मनःकामना पूर्ण होनेका वर दिया। इस प्रकार सीताजी राजमहल लौट गयीं और श्रीराम लक्ष्मणसे सीताके सौन्दर्यकी चर्चा करते हुए पुष्प लेकर विश्वामित्रके पास पहुँचे। पूजा करनेके बाद विश्वामित्रजीने भी श्रीरामको मनोरथ-सिद्धिका वर दिया।

[1017] 2/A

दोनों राजकुमार रंगभूमिमें

महाराज जनकने अपने पुरोहित श्रीशतानन्दजीको विश्वामित्रसहित दोनों राजकुमारोंको रंगभूमिमें बुलानेके लिये भेजा। शतानन्दजीने महर्षि विश्वामित्रसे श्रीराम-लक्ष्मणके साथ रंगभूमिमें पधारनेका अनुरोध किया। फिर श्रीराम-लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रजीके साथ अत्यन्त हर्षित होकर धनुष-यज्ञ देखनेके लिये चले। जब पुरवासियोंने सुना कि दोनों राजकुमार रंगभूमिमें आ रहे हैं, तब बाल, युवा, वृद्ध तथा नारियाँ सभी अपने-अपने गृहकार्यको छोड़कर तुरन्त रंगभूमिमें पहुँचने लगे। रंगभूमिमें अत्यन्त भीड़ होती देखकर महाराज जनकने सबको यथास्थान बैठानेका आदेश दिया।

उसी समय महामुनि विश्वामित्रके साथ दोनों राजकुमार रंगभूमिमें पहुँचे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, जैसे सौन्दर्य ही शरीर धारण करके रंगभूमिमें आ गया हो। महाराज जनकने अपने भाई कुशध्वज तथा पुरोहित शतानन्दसहित आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। जो भी श्रीराम-लक्ष्मणपर दृष्टि डालता, उसकी आँखें स्थिर होकर उन्हें देखती ही रह जातीं। उनके कन्धोंपर तरकश तथा हाथोंमें धनुष-बाण सुशोभित है। वे कानोंमें स्वर्णफूल, कंधेपर यज्ञोपवीत तथा शरीरपर पीताम्बर धारण किये हैं। उनकी आँखें कमल तथा मुख चन्द्रमाके समान है। उनके सिरपर चौतनी टोपियाँ हैं। श्यामल और गौरवर्णके वे दोनों राजकुमार देखनेमें अत्यन्त कोमल तथा बलके समुद्र लग रहे हैं। वे राजाओंके इस समाज (तारामण्डल)-में पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहे हैं। सब लोग अपनी-अपनी भावनाके अनुसार अयोध्याके इन राजकुमारोंका दर्शन कर रहे हैं। वे बलवानोंको महाबलवान्, कुटिल राजाओंको भयानक, असुरोंको महाकाल तथा पुरवासियोंको सौन्दर्य-सिन्धु दिखलायी पड़ रहे हैं। जनकपुरकी कमनीय नारियोंको ऐसा लग रहा है, जैसे साक्षात् शृंगाररस ही अत्यन्त मनोहर रूप धारण करके रंगभूमिमें उतर आया हो। महाराज जनकको वे अत्यन्त आत्मीय तथा सुनयनाको पुत्रवत् दिखायी दे रहे हैं।

महाराज जनक दोनों राजकुमारोंको देखकर अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने विश्वामित्रके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। सभी मंचोंमें जो सबसे विशाल तथा सुन्दर मंच बना हुआ था, वहाँ महामुनि विश्वामित्र तथा दोनों राजकुमारोंको ले जाकर महाराज जनकने सादर बैठाया।

भगवान् श्रीरामको देखकर सभी राजा उसी प्रकार तेजहीन हो गये, जैसे चन्द्रमाके उदित होनेपर तारोंका प्रकाश क्षीण हो जाता है। सबको ऐसा विश्वास हो गया कि निश्चित रूपसे धनुषको श्रीराम ही तोड़ेंगे। एक राजाने कहा कि यदि धनुष न टूटे, तब भी सीता श्रीरामके गलेमें ही जयमाल डालेंगी, क्योंकि इस सम्पूर्ण राजसमाजमें एक श्रीराम ही सीताके योग्य वर हैं। इसलिये सबको अपने-अपने घर चले जाना चाहिये, यहाँ बैठकर व्यर्थ अपना तेज और बल गँवानेकी आवश्यकता नहीं है। कुछ अभिमानी और अविवेकी राजाओंको यह बात पसंद नहीं आयी। उन्होंने कहा कि धनुष तोड़नेके बादकी बात दूसरी है, लेकिन बिना धनुष तोड़े ऐसा कौन है, जो सीतासे विवाह करेगा ? एक बार यदि काल भी सामने आ जायगा तो उससे भी हम सीताके लिये युद्ध करेंगे।

उस समय कुछ साधु राजाओंने कहा—'सारे राजाओंके गर्वको खण्डितकर श्रीराम ही सीतासे विवाह करेंगे। काल भी उन्हें जीतनेकी शक्ति नहीं रखता। तुम सब व्यर्थ बातें मत करो। श्रीराम जगत्पिता हैं और सीताको जगदम्बा जानो। आज तो आँखें भरकर जगज्जननी और जगत्पिता श्रीसीता-रामके सौन्दर्यमें डूब जाओ। यही जीवनका वास्तविक फल है।

स्वयंवरमें लक्ष्मण-कोप

महाराज जनकने शुभ समय जानकर सीताजीको बुलवाया। वे चतुर सखियोंके साथ रंगभूमिमें आयीं। सखियाँ कोकिल-कण्ठसे मंगल-गीत गा रही थीं। जगदम्बा सीताका अतुलित सौन्दर्य वाणीका विषय नहीं है। संसारकी सारी उपमाएँ प्राकृत नारियोंके लिये हैं। सीताजीके अनुपम सौन्दर्यकी तुलना भला उनसे कैसे की जा सकती है? संसारमें ऐसी कोई स्त्री नहीं है जिससे सीताजीकी तुलना की जा सके। देवताओंकी स्त्रियोंमें सरस्वतीजी अधिक बातूनी हैं तथा पार्वतीजीका आधा शरीर है। रति अपने पतिके अनंग होनेके कारण दुःखी है तथा लक्ष्मीजीका सम्बन्ध विष और वारुणीके साथ है। इसलिये भगवती सीताकी तुलना किसीसे भी नहीं की जा सकती। उनका शरीर सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित है। रंगभूमिमें उनके आगमनसे वहाँ उपस्थित सभी लोग मोहित हो गये। उनके हाथोंमें सुन्दर जयमाल सुशोभित है। वे चारों ओर तिरछी दृष्टिसे श्रीरामको ही खोज रही हैं। अचानक विश्वामित्रके पास बैठे दोनों भाई उन्हें दिखायी दिये। श्रीरामको देखकर उन्हें ऐसा लगा, जैसे उन्होंने अपनी आँखोंका लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

भगवान् श्रीराम और श्रीसीताजीके अनुपम सौन्दर्यको देखकर वहाँके सभी नर-नारी अपनी पलकोंको झपकाना ही भूल गये, मानो सभी लोग इस दिव्य सौन्दर्यको आँखोंके रास्ते उतारकर हृदयमें रख लेना चाहते हैं। सभी मिथिलावासी यही चर्चा कर रहे हैं कि जानकीके योग्य वर साँवले-सलोने श्रीरामचन्द्र ही हैं। महाराज जनकको अपना प्रण छोड़कर इस मनोहर जोड़ीका विवाह कर देना चाहिये। उसी समय महाराज जनकने बन्दीजनोंको अपना प्रण राजाओंको सुना देनेका आदेश दिया।

बन्दीजनोंने कहा—'हम अपनी भुजा उठाकर महाराज जनकका प्रण कहते हैं। सभी राजागण ध्यान देकर सुनें! महाराज जनकका प्रण है कि भगवान् शंकरके इस कठोर धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर जो उसे तोड़ देगा, उसके साथ सीताका विवाह कर दिया जायगा। यह धनुष सामान्य नहीं है। रावण और बाणासुर-जैसे विश्व-प्रसिद्ध योद्धा भी इस धनुषको केवल देखकर ही वापस चले गये, उनके अन्दर धनुषको छूनेका भी साहस नहीं हुआ। आज त्रैलोक्यके यशके साथ वैदेही धनुष तोड़नेवालेको प्राप्त होगी। आप लोग अपने शक्तिका परीक्षण करनेके लिये आगे आयें।'

इसके बाद एक-से-एक अभिमानी राजा अपने-अपने इष्टदेवसे प्रार्थना करके आगे आने लगे, किन्तु धनुषको तोड़ना तो दूर; वे उसे तिलभर हिला भी न सके। इस प्रकार सारे राजा परास्त होकर तथा लज्जित होकर अपने-अपने स्थानपर बैठ गये।

महाराज जनकका धैर्य जवाब दे गया। दुःख और रोषका चिह्न उनके चेहरेपर साफ दिखायी देने लगा। उन्होंने कहा—'अब कोई अपने-आपको वीर कहनेका दुःसाहस न करे। लगता है धरतीने अब वीरोंका प्रसव करना ही बन्द कर दिया है। यदि मुझे यह पता होता तो मैं ऐसा प्रण करता ही नहीं। धनुषको तोड़ना तो अलग है, कोई इसे तिलभर खिसका भी न सका। कृपया अब आप लोग आशा छोड़कर अपने-अपने घर जायँ। लगता है कि विधाताने सीताका विवाह ही नहीं लिखा है।'

महाराज जनककी बातें सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणके ओठ फड़कने लगे। आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उन्होंने आक्रोशमें कहा—'जिस समाजमें रघुवंशका एक भी बच्चा विद्यमान हो, वहाँ इस तरहकी बात कहनेका दुःसाहस कोई नहीं कर सकता है। भगवान् श्रीरामके उपस्थित रहते हुए महाराज जनकने जो बातें कही हैं, वे मेरे हृदयमें शूलकी तरह चुभ रही हैं। क्या करूँ, मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं श्रीरामका अपमान नहीं सह सकता। प्रभु श्रीराम यदि मुझे आदेश दें तो मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको उठाकर कच्चे घड़ेकी तरह फोड़ सकता हूँ। यह धनुष तो अति सामान्य है। इसे तोड़नेकी शक्ति तो मात्र मेरी एक अँगुलीमें है।'

धनुष-भंग

श्रीलक्ष्मणजी जब क्रोधित होकर बोले, तब दसों दिशाओंके दिक्पालोंके मस्तक काँप गये। धरती डगमगाने लगी। राजाओंमें भय फैल गया। सीताजी परम प्रसन्न हुईं और महाराज जनक अपनी भूलपर पछताने लगे। श्रीराम तथा महामुनि विश्वामित्र मन-ही-मन प्रसन्न हुए। श्रीरामने लक्ष्मणको संकेतसे ही शान्त करके प्रेमसे अपने निकट बैठाया।

महामुनि विश्वामित्रने शुभ समय जानकर श्रीरामसे कहा—'हे राम! उठो; शिवजीका धनुष तोड़कर अब महाराज जनकके इस संतापको दूर करो तथा संसारको अपने असीम बाहुबलका परिचय दो।'

महामुनि विश्वामित्रके आदेशको शिरोधार्य कर श्रीराम धनुष तोड़नेके उद्देश्यसे उठे। उनके मनमें न किसी प्रकारका हर्ष था, न विषाद। उन्होंने सर्वप्रथम महामुनि विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम किया और धनुषकी ओर चले। श्रीरामको धनुषकी ओर जाते देखकर पुरवासी परम प्रसन्न हुए। उन लोगोंने देवताओं तथा पितरोंसे प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि यदि हम लोगोंके थोड़े भी पुण्य शेष हों तो उस पुण्यके प्रभावसे श्रीराम शिव-धनुषको कमलनालकी तरह सहज ही तोड़ दें।

महारानी सुनयनाने सखियोंको निकट बुलाकर कहा—'महाराजको कोई समझाता भी नहीं है। श्रीराम बालक और अत्यन्त कोमल हैं। शिवजीके कठोर धनुषको ये कैसे तोड़ेंगे ? जिस धनुषको रावण और बाणासुर-जैसे योद्धा छूनेका भी साहस नहीं कर सके और जिसने बड़े-बड़े राजाओंके बलके दर्पको चूर-चूर कर दिया—ऐसे कठोर धनुषको तोड़नेके लिये श्रीरामको भेजना बुद्धिमानी नहीं है! पता नहीं महामुनि विश्वामित्रके बुद्धिको क्या हो गया कि उन्होंने श्रीरामको धनुष तोड़नेके लिये आदेश दे दिया।'

एक चतुर सखीने सुनयनाजीको समझाते हुए कहा—'रानी! श्रीरामको आप बालक मत समझें। आप विचार करें, कहाँ कुम्भज और कहाँ विशाल समुद्र! लेकिन क्षणमात्रमें वे उसे पी गये। सूर्यका मण्डल देखनेमें कितना छोटा लगता है, लेकिन उसके उदित होते ही तीनों लोकोंका अन्धकार नष्ट हो जाता है। मन्त्र अत्यन्त लघु होता है, लेकिन उसको सिद्ध करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव—सबको अपने वशमें कर लेते हैं। इसलिये आप निश्चिन्त रहें। श्रीराम निश्चित ही शिव-धनुषको तोड़ेंगे।'

सीताजीने मन-ही-मन भगवान् शिव और पार्वतीको मनाते हुए कहा—'अबतक मैंने आप दोनोंकी मन लगाकर सेवा की है। आज मैं आप दोनोंसे करबद्ध निवेदन करती हूँ कि आप धनुषको हलका कर दें, जिससे रघुनाथ उसे आसानीसे उठा सकें।'

भगवान् श्रीरामने सीताके मनकी बात जान ली और उन्होंने शिव-धनुषकी ओर देखा। श्रीलक्ष्मणजीने दिक्पालोंको सम्बोधित करके कहा—'अब आप लोग सावधान हो जायँ। श्रीराम शिव-धनुषको तोड़ना चाहते हैं। इसलिये पृथ्वीको सावधान होकर धारण कर लें।'

श्रीरामने देखा कि सभी लोग चिन्तित खड़े हैं। सीताके मनकी व्याकुलता बढ़ती जा रही है। इसलिये उन्होंने गुरुको मन-ही-मन प्रणाम करके शिव-धनुषको क्षणमात्रमें उठा लिया और बीचसे उसके दो खण्ड करके पृथ्वीपर डाल दिया। यह सब कार्य इतना शीघ्र हो गया कि धनुष कब उठा और कब टूट गया, इसे कोई देख भी नहीं पाया। धनुषके टूटनेसे इतनी कठोर ध्वनि हुई कि सबको अपने कान बन्द कर लेने पड़े। धनुषके टूटते ही सब लोग अत्यन्त सुखी हो गये। चारों ओर नाना प्रकारके बाजे बजने लगे। आकाशसे देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की। महाराज जनक अपनी रानी सुनयना-समेत परम प्रसन्न हुए। उसी समय महाराज जनकके पुरोहित श्रीशतानन्दजीने आदेश दिया कि सीता श्रीरामके गलेमें जयमाल डालें। श्रीसीताजी सखियोंके साथ जयमाल डालनेके लिये चलीं। मंगलगीतोंसे रंगभूमि गूँजने लगी। उसी समय सीताजीने श्रीरामके गलेमें जयमाल डाल दिया।

श्रीपरशुराम-लक्ष्मण-संवाद

भगवान् श्रीरामका यश चारों ओर फैल गया। सभी लोग श्रीसीता-रामकी जय बोलने लगे। ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। नगरकी नारियाँ श्रीसीता-रामकी आरती उतारने लगीं। जनकपुरवासियोंकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। तीनों लोकोंमें यह समाचार फैल गया कि श्रीरामने शिव-धनुष तोड़कर सीताजीको प्राप्त कर लिया। उसी समय राजाओंमें कोलाहल फैल गया। दुष्ट राजा अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र उठाकर युद्धके लिये तैयार होने लगे। वे कहने लगे कि धनुष तोड़नेसे क्या होता है? हमारे जीते-जी सीताको कोई नहीं वर सकता। दोनों राजकुमारोंको बाँध लो। सीताको छीन लो। यदि जनक सहायता करें तो उन्हें भी बन्दी बना लो।

साधु राजाओंने उनसे कहा—'तुम लोगोंको लज्जा नहीं आती। तुम्हारी वीरता तो धनुषके साथ चली गयी। अरे! यदि तुम लोगोंमें जरा भी स्वाभिमान बचा है तो मुँहमें कालिख लगाकर चुल्लूभर पानीमें डूब मरो। यदि तुम लोग जीवित रहना चाहते हो तो श्रीरामसे ईर्ष्या छोड़ दो, नहीं तो लक्ष्मणजीकी क्रोधाग्नि तुम्हें जलाकर भस्म कर देगी।'

राजाओंके विवादको देखकर सब लोग उन्हें गालियाँ देने लगे। कोलाहल बढ़ता देखकर सखियाँ सीताजीको अन्तःपुरमें ले गयीं। उसी समय शिव-धनुषके टूटनेकी कठोर आवाज सुनकर भृगुकुलके सूर्य परशुरामजीका रंगभूमिमें आगमन हुआ। उनको देखते ही सभी दुष्ट राजा शान्त होकर अपनी-अपनी जगहपर बैठ गये।

परशुरामजीके उग्ररूपको देखकर सभी राजाओंके मनमें भयका संचार हो गया। वह अपने गोरे शरीरपर विभूति रमाये हुए थे और उनका उन्नत ललाट त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित था। उनकी कमरमें मृगछाला तथा कन्धेपर दो तरकश थे। वे हाथोंमें धनुष-बाण तथा एक कन्धेपर फरसा रखे हुए थे। परशुरामजीके कठोर वेषको देखकर सभी राजा अपने-अपने पिताका नाम बताते हुए उन्हें प्रणाम करने लगे। जिसे वे एक बार सामान्य दृष्टिसे भी देख लेते, उसे लगता था कि अब मृत्यु आनेवाली है। महाराज जनकने अपनी पुत्री सीताको बुलवाकर परशुरामजीको प्रणाम करवाया। उन्होंने सीताको सौभाग्यवती होनेका वरदान दिया। उसके बाद महामुनि विश्वामित्रजी उनसे मिले। तदनन्तर श्रीराम-लक्ष्मणके प्रणाम करनेपर उन्होंने उस सुन्दर जोड़ीको आशीर्वाद दिया। श्रीरामके सौन्दर्यको तो वे देखते ही रह गये।

उसके बाद परशुरामजीने महाराज जनकको सम्बोधित करके कहा—'जनक! आज तुम्हारे यहाँ राजाओंकी इतनी भीड़ क्यों है?' महाराज जनकने उन्हें आदिसे अन्ततक सारा समाचार बताया। शिव-धनुषके टुकड़ोंको जमीनपर पड़ा देखकर परशुरामजी अत्यन्त क्रोधित होकर बोले—'जनक! तुम जल्दी बताओ, इस धनुषको किसने तोड़ा है? यदि तुम बतानेमें विलम्ब करोगे तो तुम्हारे सम्पूर्ण राज-पाटको अभी नष्ट कर दूँगा।' बातको बढ़ती देखकर श्रीराम सामने आये। उन्होंने कहा—'मुनिवर! शिवजीके धनुषको तोड़नेवाला कोई शिवप्यारा तथा आपका दास ही होगा।'

परशुरामजी बोले—'राम! सेवक वह होता है जो स्वामीकी सेवा करे। शिवजीका धनुष तोड़नेवाला निश्चित रूपसे मेरे फरसेका भोजन है। वह इस राज-समाजसे जल्द ही बाहर हो जाय, नहीं तो सम्पूर्ण राजा आज मेरे हाथों मारे जायँगे।'

लक्ष्मणजीने कहा—'मुनिवर! हमने बचपनमें बहुत-सी धनुहियाँ तोड़ डालीं, लेकिन आपको ऐसा क्रोध नहीं हुआ। इस पुराने धनुषपर आपकी इतनी ममता क्यों है?' परशुरामजी और भी क्रोधित होकर बोले—'मूर्ख! तुझे मैं बालक समझकर क्षमा करता जा रहा हूँ और तू मेरी क्रोधाग्निमें घृत डाल रहा है। अब तुझे मेरे क्रोधसे कोई नहीं बचा सकता।' श्रीरामने कहा—'प्रभो! यह तो बालक है। आपका असली अपराधी तो मैं हूँ। आप जो चाहे करें। मैं आपके सामने शीश नवाकर खड़ा हूँ।' परशुरामजीको पता लग गया कि श्रीराम नारायणके अवतार हैं; क्योंकि उनका धनुष श्रीरामके हाथोंमें स्वयं ही चला गया और जाते ही चढ़ गया। वे श्रीरामको बार-बार प्रणाम करके तथा अपना धनुष सौंपकर महेन्द्र पर्वतपर तपस्या करने चले गये।

चारों कुमारोंका विवाह

महामुनि विश्वामित्रने महाराज जनकसे कहा—'यद्यपि सीताका विवाह धनुष टूटनेके अधीन था और धनुष टूटते ही श्रीसीता-रामका विवाह हो गया। फिर भी जनकपुरसे तीव्रगामी दूतोंको महाराज दशरथके पास संदेश देकर भेजा जाय और उन्हें बुलवाकर वेदविधिके अनुसार विधिवत् विवाह सम्पन्न कराया जाय।'

महाराज जनकने श्रीविश्वामित्रजीकी आज्ञाको सादर शिरोधार्य कर तीव्रगामी दूतोंको अयोध्या भेजनेका आदेश दिया और परिचारिकोंको जनकपुर खूब सुन्दर ढंगसे सजानेके लिये कहा।

दूतोंने जब महाराज दशरथको सारा समाचार दिया तो वे परम प्रसन्न हुए। श्रीराम-विवाहकी बात सुनकर राजभवन एवं सम्पूर्ण अयोध्यामें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। शुभ दिन देखकर कुल-पुरोहित श्रीवसिष्ठ तथा बारातियोंको लेकर महाराज दशरथ भरत और शत्रुघ्नसहित मिथिला पहुँचे। जनकपुरके प्रवेशद्वारपर ही महाराज जनकने अपने कुल-पुरोहित शतानन्द एवं परिजनोंके साथ महाराज दशरथका भव्य स्वागत किया। महाराज दशरथ एवं बारातियोंके ठहरनेकी यथोचित व्यवस्था की गयी। महर्षि वसिष्ठ एवं जनकके कुल-पुरोहित शतानन्दने मिलकर विवाहके लिये शुभ मुहूर्त निश्चित किया। महाराज जनकने अपनी छोटी पुत्री उर्मिला एवं अपने भाई कुशध्वजकी पुत्रियाँ माण्डवी और श्रुतकीर्तिके विवाहका प्रस्ताव भी लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ करनेके लिये महाराज दशरथके सामने रखा। सर्वसम्मतिसे इस प्रस्तावका सहर्ष अनुमोदन किया गया।

विवाहकी तैयारी प्रारम्भ हुई। सारे नगरमें प्रसन्नता और उत्साहकी लहर दौड़ गयी। सम्पूर्ण मिथिलामें महोत्सवका वातावरण छा गया। ध्वज, तोरण, कदली-स्तम्भों एवं बन्दनवारोंसे राजमार्गों एवं बाजारोंको सजाया गया। प्रत्येक घरके सामने मंगल-कलशके साथ नाना प्रकारके रंगोंसे अलंकृत रंगोलियाँ सजायी गयीं। घर-घरमें मंगल-वाद्य बज उठे। विवाह-मण्डपको नाना प्रकारके मंगल-वस्तुओं एवं रत्नोंसे सजाया गया।

विवाहका शुभ दिन आया। उस दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था। महर्षि वसिष्ठसहित महाराज दशरथ अपने चारों पुत्रोंके साथ विवाह-मण्डपमें आये। सुन्दर वस्त्रों एवं अलङ्कारोंसे सुशोभित चारों भाइयोंकी शोभा अवर्णनीय थी। सभी लोग उन्हें देखकर मन्त्रमुग्ध हो गये।

श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न विवाह-मण्डपमें आये तथा सीताके साथ उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्तिको भी महाराज जनकने मण्डपमें बुलवाया। उनकी अलौकिक शोभासे विवाह-मण्डप जगमगाने लगा। महाराज जनकने महर्षि वसिष्ठसे विवाह-विधि आरम्भ करनेकी प्रार्थना की। पहले शास्त्र-विधिसे विवाह-मण्डपकी पूजा की गयी और होमकुण्डमें अग्निकी स्थापना हुई। वैदिक-मन्त्रोंके उच्चारणसे आकाश गूँज उठा। सोलह श्रृंगारोंसे सजी सीताका हाथ श्रीरामके हाथमें देकर महाराज जनकने श्रीरामसे कहा—'राम! मेरी पुत्री सीताका पाणिग्रहण करो। यह तुम्हारी पत्नी रहकर तुम्हारे धर्माचरणकी अभिन्न सहयोगिनी बनेगी।' उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्तिका भी पाणिग्रहण लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ उसी प्रकार हुआ। राजकुमारोंने अपनी-अपनी वधुओंके साथ अग्निकी परिक्रमा की। देवताओंने दुन्दुभी बजायी और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। आकाशसे पुष्प-वर्षा होने लगी। चारों ओर हर्ष एवं आनन्द छा गया। इस प्रकार चारों कुमारोंका विवाह सम्पन्न हुआ।

कुछ दिन मिथिलामें रहकर महाराज दशरथ अयोध्या लौटनेकी तैयारी करने लगे। महाराज जनकने यथोचित भेंट देकर भरे दिलसे उन्हें विदाई दी। राजा दशरथ उनसे विदा लेकर अपने पुत्रों, वधुओं और बारातियोंके साथ अयोध्या लौटे।

स्वयंवरमें लक्ष्मण-कोप

महाराज जनकने शुभ समय जानकर सीताजीको बुलवाया। वे चतुर सखियोंके साथ रंगभूमिमें आयीं। सखियाँ कोकिल-कण्ठसे मंगल-गीत गा रही थीं। जगदम्बा सीताका अतुलित सौन्दर्य वाणीका विषय नहीं है। संसारकी सारी उपमाएँ प्राकृत नारियोंके लिये हैं। सीताजीके अनुपम सौन्दर्यकी तुलना भला उनसे कैसे की जा सकती है? संसारमें ऐसी कोई स्त्री नहीं है जिससे सीताजीकी तुलना की जा सके। देवताओंकी स्त्रियोंमें सरस्वतीजी अधिक बातूनी हैं तथा पार्वतीजीका आधा शरीर है। रति अपने पतिके अनंग होनेके कारण दुःखी है तथा लक्ष्मीजीका सम्बन्ध विष और वारुणीके साथ है। इसलिये भगवती सीताकी तुलना किसीसे भी नहीं की जा सकती। उनका शरीर सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित है। रंगभूमिमें उनके आगमनसे वहाँ उपस्थित सभी लोग मोहित हो गये। उनके हाथोंमें सुन्दर जयमाल सुशोभित है। वे चारों ओर तिरछी दृष्टिसे श्रीरामको ही खोज रही हैं। अचानक विश्वामित्रके पास बैठे दोनों भाई उन्हें दिखायी दिये। श्रीरामको देखकर उन्हें ऐसा लगा, जैसे उन्होंने अपनी आँखोंका लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

भगवान् श्रीराम और श्रीसीताजीके अनुपम सौन्दर्यको देखकर वहाँके सभी नर-नारी अपनी पलकोंको झपकाना ही भूल गये, मानो सभी लोग इस दिव्य सौन्दर्यको आँखोंके रास्ते उतारकर हृदयमें रख लेना चाहते हैं। सभी मिथिलावासी यही चर्चा कर रहे हैं कि जानकीके योग्य वर साँवले-सलोने श्रीरामचन्द्र ही हैं। महाराज जनकको अपना प्रण छोड़कर इस मनोहर जोड़ीका विवाह कर देना चाहिये। उसी समय महाराज जनकने बन्दीजनोंको अपना प्रण राजाओंको सुना देनेका आदेश दिया।

बन्दीजनोंने कहा—'हम अपनी भुजा उठाकर महाराज जनकका प्रण कहते हैं। सभी राजागण ध्यान देकर सुनें! महाराज जनकका प्रण है कि भगवान् शंकरके इस कठोर धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर जो उसे तोड़ देगा, उसके साथ सीताका विवाह कर दिया जायगा। यह धनुष सामान्य नहीं है। रावण और बाणासुर-जैसे विश्व-प्रसिद्ध योद्धा भी इस धनुषको केवल देखकर ही वापस चले गये, उनके अन्दर धनुषको छूनेका भी साहस नहीं हुआ। आज त्रैलोक्यके यशके साथ वैदेही धनुष तोड़नेवालेको प्राप्त होगी। आप लोग अपने शक्तिका परीक्षण करनेके लिये आगे आयें।'

इसके बाद एक-से-एक अभिमानी राजा अपने-अपने इष्टदेवसे प्रार्थना करके आगे आने लगे, किन्तु धनुषको तोड़ना तो दूर; वे उसे तिलभर हिला भी न सके। इस प्रकार सारे राजा परास्त होकर तथा लज्जित होकर अपने-अपने स्थानपर बैठ गये।

महाराज जनकका धैर्य जवाब दे गया। दुःख और रोषका चिह्न उनके चेहरेपर साफ दिखायी देने लगा। उन्होंने कहा—'अब कोई अपने-आपको वीर कहनेका दुःसाहस न करे। लगता है धरतीने अब वीरोंका प्रसव करना ही बन्द कर दिया है। यदि मुझे यह पता होता तो मैं ऐसा प्रण करता ही नहीं। धनुषको तोड़ना तो अलग है, कोई इसे तिलभर खिसका भी न सका। कृपया अब आप लोग आशा छोड़कर अपने-अपने घर जायँ। लगता है कि विधाताने सीताका विवाह ही नहीं लिखा है।'

महाराज जनककी बातें सुनकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणके ओठ फड़कने लगे। आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उन्होंने आक्रोशमें कहा—'जिस समाजमें रघुवंशका एक भी बच्चा विद्यमान हो, वहाँ इस तरहकी बात कहनेका दुःसाहस कोई नहीं कर सकता है। भगवान् श्रीरामके उपस्थित रहते हुए महाराज जनकने जो बातें कही हैं, वे मेरे हृदयमें शूलकी तरह चुभ रही हैं। क्या करूँ, मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं श्रीरामका अपमान नहीं सह सकता। प्रभु श्रीराम यदि मुझे आदेश दें तो मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको उठाकर कच्चे घड़ेकी तरह फोड़ सकता हूँ। यह धनुष तो अति सामान्य है। इसे तोड़नेकी शक्ति तो मात्र मेरी एक अँगुलीमें है।'

पिताके वचनका पालन

प्रातःकाल ही लोग श्रीरामका अभिषेक देखनेकी इच्छासे सुन्दर वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित होकर आने लगे। महाराज दशरथको आनेमें विलम्ब होता देखकर सुमन्त्रजी कैकेयीके अन्तःपुरमें गये। वहाँकी अवस्था देखकर वे स्तम्भित हो गये। कैकेयीने उन्हें तत्काल श्रीरामको बुलानेका आदेश दिया। सुमन्त्रके द्वारा श्रीराम कैकेयीका आदेश सुनते ही तुरन्त कैकेयीके महलकी ओर चल दिये।

महलमें पहुँचकर जब उन्होंने वहाँकी स्थिति देखी तो चकित हुए बिना न रह सके। महाराज दशरथ अत्यन्त दुःखित और चिन्तित बैठे हुए थे। शोकके आवेगमें उनका गला भरा हुआ था। वे कुछ कहना चाहकर भी नहीं कह पा रहे थे। श्रीरामने महाराज दशरथ और कैकेयीको प्रणाम किया। उसके बाद उन्होंने कैकेयीसे पूछा—'माँ! पिताजीके इस विषाद और चिन्ताका क्या कारण है? क्या मुझसे जाने-अनजानेमें कोई अपराध हो गया है?'

कैकेयीने कहा—'श्रीराम! तुम अपराधके योग्य नहीं हो। तुम्हारा तो अवतार ही माता-पिता और बन्धुओंको सुख देनेके लिये हुआ है। तुम्हारे पिताजीने पूर्वकालमें मेरी एक सहायताके बदले मुझे दो वरदान देनेके लिये कहा था। आज मैंने उचित समय जानकर उसे माँग लिया। एक वरदानके बदले श्रीभरतको अयोध्याका राज्य मिलना है और दूसरेसे तुम्हें चौदह वर्षका वनवास। महाराज संकोचवश तुमसे कह नहीं पा रहे हैं। यदि तुम चाहो तो उसे पूरा करके महाराजको असत्यवादी बननेके कलङ्कसे बचा सकते हो।' कैकेयीकी बात सुनकर श्रीराम मन-ही-मन मुसकराने लगे। दूसरा कोई व्यक्ति होता तो इतनी बड़ी विपत्तिसे विचलित हो जाता, परन्तु श्रीरामको दुःख-सुख स्पर्श भी नहीं कर सकते। उनका तो आनन्द ही सहज स्वभाव है। उन्होंने कहा—'माँ! तुम चिन्ता न करो। पिताजीके सत्यकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।'

संसारमें वह पुत्र सबसे बड़ा भाग्यवान् है, जिसका माता-पिताकी सेवामें सहज अनुराग है। माता-पिताको हर प्रकारसे संतुष्ट करनेवाला पुत्र इस संसारमें दुर्लभ है। आज यह अवसर देकर तुमने मुझे धन्य कर दिया। तुमसे बड़ा हित-चिन्तक मेरा कोई नहीं है। मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे वनमें संत-महात्माओंके दर्शनका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। मेरे द्वारा पिताके आदेशका पालन हो रहा है और तुम्हें सुख प्राप्त हो रहा है। समाजको भरत-जैसा गुणवान् राजा प्राप्त होगा। मेरे लिये भरत प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। आज तो मेरे लिये विधाता सभी तरहसे अनुकूल हैं। मुझे केवल एक ही कष्ट है कि पिताजीको इस छोटी-सी बातके लिये इतना कष्ट हुआ।' यह कहकर श्रीरामने पिताके चरणोंमें पुनः प्रणाम किया। महाराज दशरथ श्रीरामको एकटक देखते ही रह गये। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा प्रवाहित होने लगी। वे मन-ही-मन भगवान् शिवसे विनती करते हुए प्रार्थना करने लगे—'हे भगवान् शिव, आप सबके प्रेरक हैं। आप श्रीरामके हृदयमें ऐसी प्रेरणा दें कि वे मेरे वचनका परित्याग कर दें और वन न जायँ। मुझे यश-अपयश, स्वर्ग-नरक कुछ भी मिले, इसकी चिन्ता नहीं है। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि श्रीराम मेरी आँखोंके सामने बने रहें।'

पिताजीको प्रेमके वशीभूत जानकर श्रीरामने कहा—'महाराज! आप चिन्ताका परित्याग कर दें। मैं माताजीसे विदा माँगकर शीघ्र वनके लिये तैयार हो जाऊँगा। मुझे कष्ट है कि आपको इतनी छोटी-सी बातके लिये इतना दुःख हुआ। संसारमें उसी पुत्रका जन्म सार्थक है, जिसके चरित्रको पिता हर्षित होकर सुनें। माता-पिता जिसे प्राणोंके समान प्रिय हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थ उसे सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। आप दुःखका परित्याग कर दें। मैं चौदह वर्षोंतक वनमें रहकर आपके आदेशका पालन करनेके बाद शीघ्र लौटकर आपके चरणोंका दर्शन करूँगा।' ऐसा कहकर श्रीराम कौसल्याके भवनकी ओर चले गये और महाराज दशरथ चाहकर भी शोकवश उनका कुछ उत्तर नहीं दे सके।

सुमित्राका उपदेश

श्रीरामके वन-गमनका समाचार अयोध्यामें जंगलमें लगी आगकी तरह फैल गया। हर्षका वातावरण क्षणमात्रमें शोकके भयानक सिन्धुमें डूब गया। अयोध्याके राजभवनमें जहाँ मंगलगीतोंके मधुर स्वर गूँज रहे थे, वहाँ उनका स्थान करुण विलापने ले लिया। माँ कौसल्याके तो दुःखका पारावार ही नहीं रहा। अयोध्यावासियोंके दुःख और व्यथामें डूबे स्वर कुटिल कैकेयीके प्रति गालियोंकी बौछार कर रहे थे। विदेहनन्दिनी जानकीने श्रीरामके बार-बार समझानेपर भी उनके अनुगमनका ही निश्चय किया।

उसी समय सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने यह दुःख-भरा समाचार सुना। वे अत्यन्त व्याकुल होकर आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहाते हुए श्रीरामकी ओर दौड़े। उन्होंने भगवान् श्रीरामके चरणोंको पकड़ लिया। उनके मनमें संदेह था कि पता नहीं श्रीराम मुझे अपने साथ ले चलेंगे या नहीं। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि उन्होंने देह और संसारके सारे सम्बन्धोंसे मुँह मोड़ लिया है।

श्रीरामने उन्हें समझाते हुए कहा—'भाई! तुम प्रेमके कारण अपने कर्तव्य-पथका त्याग मत करो, अयोध्यामें रहकर माता-पिताकी सेवा करो। देखो! इस समय अयोध्यामें शोकका साम्राज्य है। भरत और शत्रुघ्न भी अयोध्यासे दूर हैं। पिताजी अत्यन्त वृद्ध और मेरे वियोगके दुःखसे दुःखी हैं। यदि तुम भी अयोध्याको छोड़कर मेरे साथ वन चलोगे तो सभी लोग अनाथ हो जायँगे। भाई! इस समय गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार—सब-के-सब दुःखके सागरमें डूब रहे हैं। इस अवस्थामें तुम्हारा अयोध्यामें रहना नितान्त आवश्यक है।'

लक्ष्मणने कहा—'प्रभो! आपकी सीख अच्छी है, इसमें कोई संशय नहीं। परन्तु मैं तो बच्चा हूँ, जिसे सीखसे अधिक आपके प्रेमरूपी छाँवकी आवश्यकता है। मैंने तो अपने जीवनमें माता-पिता और गुरुके सम्बन्धोंपर कभी विचार ही नहीं किया। जहाँतक जगत्‌के अन्य सम्बन्धोंकी बात है तो मैंने सभी सम्बन्धोंको केवल आपके साथ ही जोड़ रखा है। धर्म और नीतिकी आवश्यकता तो उसे है, जिसे कीर्ति, सम्पत्ति और सुगति प्रिय है। हे कृपासिन्धु! मेरी तो मन, वचन और कर्मसे केवल आपमें ही प्रीति है। फिर मेरा त्याग कहाँतक उचित है?' जब श्रीरामने समझ लिया कि लक्ष्मण किसी भी अवस्थामें नहीं मानेंगे, तब उन्होंने कहा—'ठीक है, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मातासे विदा माँगकर शीघ्र वन-गमनकी तैयारी करो।'

लक्ष्मण प्रसन्नतासे खिल उठे और शीघ्र जाकर माँ सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम किया। सुमित्राजीने परिस्थितिको समझकर कहा—'लक्ष्मण! तुम्हारे तो माता-पिता केवल श्रीसीता-राम हैं। इसलिये तुम्हारा अवध वहीं है, जहाँ श्रीराम हैं। यदि श्रीसीता-राम वन जा रहे हैं तो अयोध्यामें तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। संसारमें जितने सम्बन्ध हैं, वे केवल श्रीरामके कारण ही हैं। उसी स्त्रीका पुत्रवती होना सार्थक है, जिसका पुत्र श्रीरामका भक्त है। यदि ऐसा नहीं है तो निपूती रहना ही ठीक है। पुत्र! श्रीराम केवल तुम्हारे ही भाग्यसे वन जा रहे हैं, इसका और कोई कारण नहीं है। संसारमें सभी सत्कर्मोंका फल श्रीसीता-रामके पावन चरणोंमें प्रेम ही है। इसलिये तुम राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद और मोह—सबको छोड़कर श्रीसीता-रामके चरणोंमें प्रेम करो। तुम्हारे लिये वन तो सौभाग्यका केन्द्र है, क्योंकि तुम्हारे साथ श्रीसीता-राम-जैसे माता-पिता हैं। इसलिये जिस प्रकार भी वनमें उन्हें किसी प्रकार कष्ट न हो, तुम वही करना। यही मेरा उपदेश है।' माँ सुमित्राके चरणोंमें बार-बार प्रणाम करके लक्ष्मण श्रीसीता-रामके पास लौट आये और वहाँसे तीनों पथिक महाराज दशरथके पास अन्तिम विदा लेने गये।

पुष्पवाटिकामें श्रीराम-लक्ष्मण

प्रातःकाल दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके आदेशसे महाराज जनककी फुलवारीमें पूजाके लिये फूल लेने गये। महाराज जनककी वाटिका अत्यन्त ही मनोहर थी। वहाँ नाना प्रकारके पुष्पोंके साथ फलदार वृक्ष भी लगे हुए थे। वाटिकाके मध्य भागमें एक सुन्दर सरोवर था, जिसकी सीढ़ियोंपर मणियाँ जड़ी हुई थीं। सरोवरके किनारे गौरीजीका एक अत्यन्त ही सुन्दर मन्दिर बना हुआ था। वाटिकामें भाँति-भाँतिके पुष्प खिले हुए थे तथा भ्रमर गुंजार कर रहे थे। भगवान् श्रीराम-लक्ष्मण वाटिकाके रक्षकोंसे अनुमति लेकर गुरुदेवकी पूजाके लिये फूल चुनने लगे।

माता सुनयनाकी आज्ञासे उसी समय जनकनन्दिनी सीताने भी सखियोंके साथ गौरी-पूजनके लिये पुष्पवाटिकामें पदार्पण किया। सीताजीने सखियोंके साथ सरोवरमें स्नानके बाद भगवती गौरीका खूब अनुरागसहित पूजन किया तथा उनसे अपने ही अनुरूप सुन्दर वरकी याचना की।

सीताजीकी एक सखीने उनके साथ गौरी-पूजनमें भाग नहीं लिया, क्योंकि वह फुलवारी देखनेके लिये चली गयी थी। उसने वाटिकामें श्रीराम-लक्ष्मणको फूल चुनते हुए देखा। अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यके केन्द्र दोनों राजकुमारोंको देखकर वह प्रेमसे विह्वल हो गयी। उसके शरीरमें रोमाञ्च हो गया तथा आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक पड़े। उसकी बेसुध दशाको देखकर एक सखीने उसकी इस दशाका कारण पूछा, तो उसने कहा—'वाटिकामें पुष्प चुननेके लिये दो राजकुमार आये हुए हैं। उनके सौन्दर्यकी व्याख्या असम्भव है। मैं उन्हींके सौन्दर्य-सिन्धुमें डूबकर अपनी सुध-बुध खो चुकी हूँ। मेरी इस दशाका यही कारण है।'

दूसरी सखीने कहा—'लगता है ये वही राजकुमार हैं, जो कल महामुनि विश्वामित्रके साथ धनुष-यज्ञ देखनेके लिये आये हैं। इस समय नगरमें सर्वत्र उन्हीं राजकुमारोंके सौन्दर्यकी चर्चा हो रही है। उन्होंने अपनी अनुपम रूप-माधुरीसे नगरके समस्त नर-नारियोंको अपने वशमें कर लिया है। अतः उन्हें अवश्य देखना चाहिये।' सीताजीको उन सखियोंकी बातें अत्यन्त प्रिय लगीं। उनके मनमें अपने आराध्यके दर्शनकी लालसा तीव्र हो गयी। वे सखियोंके साथ श्रीरामकी ओर आगे बढ़ीं।

इधर सीताजीके कंगनों, करधनी तथा नूपुरोंसे निकली मधुर ध्वनिने श्रीरामके कानोंमें रस घोलना शुरू कर दिया। श्रीरामने इस ध्वनिको सुनकर जैसे ही एक कुञ्जकी तरफ देखा, वैसे ही उन्हें जनकनन्दिनी सीता अपनी सखियोंके साथ आती हुई दिखायी पड़ीं। सीताके सौन्दर्यको देखकर श्रीरामकी आँखें चकोर बनकर उनके रूप-सुधाका रसपान करने लगीं। क्षणभरके लिये दोनों तरफके नयन स्थिर हो गये।

भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! यही राजकुमारी जानकी हैं, जिनके लिये धनुष-यज्ञका आयोजन हो रहा है। रघुवंशियोंका यह सहज स्वभाव है कि वे भूलकर भी मर्यादाके विरुद्ध पैर नहीं रखते हैं, परन्तु आज मेरा पवित्र मन भी सीताकी ओर आकर्षित हो रहा है। इसका कारण विधाता ही जानते हैं।'

अचानक लतामण्डपमें राजकुमारी सीताको श्रीराम दिखायी दिये। उनकी पुरातन एवं परम पुनीत प्रीति उमड़ आयी। वे समझ गयीं कि यही मेरे आराध्य देव हैं। इस प्रकार पुष्पवाटिकामें श्रीसीता-रामका प्रथम मिलन हुआ। विलम्ब होता जानकर सीताजी पुनः गौरी-मन्दिरमें गयीं तथा उनकी दुबारा पूजा करके उनसे वर माँगा कि श्रीराम ही मेरे पति हों। सीताजीके विनय और प्रेमके वशीभूत होकर भगवती गिरिजाने उनकी मनःकामना पूर्ण होनेका वर दिया। इस प्रकार सीताजी राजमहल लौट गयीं और श्रीराम लक्ष्मणसे सीताके सौन्दर्यकी चर्चा करते हुए पुष्प लेकर विश्वामित्रके पास पहुँचे। पूजा करनेके बाद विश्वामित्रजीने भी श्रीरामको मनोरथ-सिद्धिका वर दिया।

मन्थराकी कुशिक्षा

बारातके अयोध्या लौटनेका समाचार सुनकर अयोध्यावासियोंने अयोध्याको दुल्हनकी तरह सजाया। जगह-जगह स्वागत-मण्डप बनाये गये। पूरे नगरको ध्वज, तोरण और बन्दनवारोंसे सजाया गया। मंगल-वाद्य बज उठे। स्थान-स्थानपर नागरिकोंसे सम्मानित होकर बारात राजभवन पहुँची। सुहागिन औरतोंके साथ महाराज दशरथकी तीनों रानियोंने वर-वधुओंकी आरती उतारी। वधुओंके अनुपम सौन्दर्यको देखकर कौसल्यादि रानियाँ परम प्रसन्न हुईं। सभी लोगोंने नव वर-वधुओंको हृदयसे आशीर्वाद दिया। इस प्रकार चारों राजकुमारोंका गृहस्थ-जीवन प्रारम्भ हुआ।

कुछ दिन अयोध्यामें रहकर महाराज दशरथके सभी सम्बन्धी अपने-अपने घर लौट गये। महाराज अश्वपतिके निमन्त्रणपर भरत और शत्रुघ्न अपने मामाके साथ ननिहाल चले गये और श्रीराम-लक्ष्मण महाराज दशरथकी सेवामें रह गये।

एक दिन महाराज दशरथने अपने गुरु वसिष्ठ तथा सभासदोंके सम्मुख कहा—'आप सब जानते हैं कि अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। शासन-व्यवस्थाको सँभालनेकी पहले-जैसी शक्ति मुझमें नहीं है। श्रीराम अतिशय गुणी तथा प्रजाके हित-चिन्तक हैं। प्रजा भी श्रीरामसे विशेष प्रेम करती है। यदि आप लोग अनुमति दें तो मैं श्रीरामको युवराज बनाकर राज्यभार उनके कंधोंपर डाल दूँ और स्वयं भगवद्भजनमें समय बिताऊँ।' महाराज दशरथके इस विचारसे गुरु वसिष्ठसहित सभी लोग परम प्रसन्न हुए। सब लोगोंने 'साधु! साधु!' कहकर इसका अनुमोदन किया। गुरु वसिष्ठने दूसरे दिनको राज्याभिषेकके योग्य समय बताया और अभिषेकके लिये आवश्यक सामानोंकी सूची महाराज दशरथको सौंप दी। सभी लोग तैयारीमें लग गये। देवमन्दिरों, बाजारों एवं राजमार्गोंको सजाया गया। ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ गाड़े गये और उनपर रंग-बिरंगे ध्वज फहराये गये। जगह-जगह चौक पूरे गये। सब लोग उत्कण्ठासे प्रातःकालकी प्रतीक्षा करने लगे।

देवताओंने सोचा कि यदि श्रीरामका अभिषेक हो गया तो रावण आदि राक्षसोंका वध असम्भव हो जायगा। इसलिये उन्होंने सरस्वतीको भेजकर मन्थराकी बुद्धि परिवर्तित कर दिया। मन्थरा कैकेयीकी दासी थी और स्वभावसे ही कुटिल थी। उसने जब लोगोंसे श्रीरामके अभिषेककी बात सुनी तो मन-ही-मन जल-भुन गयी। उसने कैकेयीको बताया कि कल श्रीरामका अभिषेक हो रहा है। कैकेयी श्रीरामको विशेष चाहती थी। इसलिये वह इस सन्देशसे परम प्रसन्न हुई और मन्थराको इस संवादके बदले उसने मुँहमाँगी वस्तु देनेके लिये कहा।

मन्थराने कहा—'रानी! तुम बहुत भोली हो। तुम्हें पता नहीं है कि यह अभिषेक तुम्हारे लिये कितना खतरनाक है! महाराज दशरथ तुम्हें सबसे अधिक प्रेम करते हैं। कौसल्या सौत होनेके कारण इसे सह नहीं सकती थी। इसलिये उसने चतुराईसे प्रपंच रचकर पहले महाराजको अपने वशमें कर लिया, फिर श्रीरामके अभिषेकका समय निश्चित करा लिया। यदि ऐसा हो गया तो तुम्हें दासी बनना होगा और भरतको सेवक। विरोध करनेपर भरतको बन्दीगृहमें डाल दिया जायगा तथा लक्ष्मण श्रीरामकी ओरसे राज्य चलायेंगे। तुम्हारे दो वरदान महाराजके पास बाकी हैं। उनमें एकसे भरतके लिये राज्य तथा दूसरेसे श्रीरामके लिये चौदह वर्षका वनवास माँगकर तुम अभिषेकको शोकमें बदल दो।' भावीवश कैकेयी मन्थराके कुचक्रमें फँस गयी।

जब महाराज दशरथ श्रीरामके अभिषेकका समाचार सुनाने कैकेयीके भवनमें पहुँचे तो पता लगा कि वह कोपभवनमें है। कोपभवनमें पहुँचकर महाराज दशरथने कहा—'कैकेयी! आज तुम्हारे मनके अनुसार मैंने श्रीरामका अभिषेक करनेका निर्णय ले लिया। तुम अप्रसन्न क्यों हो?' कैकेयीने कहा कि आपने मुझे दो वरदान देनेके लिये कहा था और अभीतक नहीं दिया। महाराज दशरथने जब रामकी शपथ खाकर तुरन्त वर माँगने और प्रसन्न होनेके लिये कहा, तब कैकेयीने एक वरसे भरतको राज्य तथा दूसरेसे रामको चौदह वर्षका वनवास माँगा। महाराज दशरथके बहुत समझानेपर भी वह नहीं मानी। महाराज दशरथ पूरी रात 'राम! राम!' रटते हुए विलाप करते रहे।

पिताके वचनका पालन

प्रातःकाल ही लोग श्रीरामका अभिषेक देखनेकी इच्छासे सुन्दर वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित होकर आने लगे। महाराज दशरथको आनेमें विलम्ब होता देखकर सुमन्त्रजी कैकेयीके अन्तःपुरमें गये। वहाँकी अवस्था देखकर वे स्तम्भित हो गये। कैकेयीने उन्हें तत्काल श्रीरामको बुलानेका आदेश दिया। सुमन्त्रके द्वारा श्रीराम कैकेयीका आदेश सुनते ही तुरन्त कैकेयीके महलकी ओर चल दिये।

महलमें पहुँचकर जब उन्होंने वहाँकी स्थिति देखी तो चकित हुए बिना न रह सके। महाराज दशरथ अत्यन्त दुःखित और चिन्तित बैठे हुए थे। शोकके आवेगमें उनका गला भरा हुआ था। वे कुछ कहना चाहकर भी नहीं कह पा रहे थे। श्रीरामने महाराज दशरथ और कैकेयीको प्रणाम किया। उसके बाद उन्होंने कैकेयीसे पूछा—'माँ! पिताजीके इस विषाद और चिन्ताका क्या कारण है? क्या मुझसे जाने-अनजानेमें कोई अपराध हो गया है?'

कैकेयीने कहा—'श्रीराम! तुम अपराधके योग्य नहीं हो। तुम्हारा तो अवतार ही माता-पिता और बन्धुओंको सुख देनेके लिये हुआ है। तुम्हारे पिताजीने पूर्वकालमें मेरी एक सहायताके बदले मुझे दो वरदान देनेके लिये कहा था। आज मैंने उचित समय जानकर उसे माँग लिया। एक वरदानके बदले श्रीभरतको अयोध्याका राज्य मिलना है और दूसरेसे तुम्हें चौदह वर्षका वनवास। महाराज संकोचवश तुमसे कह नहीं पा रहे हैं। यदि तुम चाहो तो उसे पूरा करके महाराजको असत्यवादी बननेके कलङ्कसे बचा सकते हो।' कैकेयीकी बात सुनकर श्रीराम मन-ही-मन मुसकराने लगे। दूसरा कोई व्यक्ति होता तो इतनी बड़ी विपत्तिसे विचलित हो जाता, परन्तु श्रीरामको दुःख-सुख स्पर्श भी नहीं कर सकते। उनका तो आनन्द ही सहज स्वभाव है। उन्होंने कहा—'माँ! तुम चिन्ता न करो। पिताजीके सत्यकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।'

संसारमें वह पुत्र सबसे बड़ा भाग्यवान् है, जिसका माता-पिताकी सेवामें सहज अनुराग है। माता-पिताको हर प्रकारसे संतुष्ट करनेवाला पुत्र इस संसारमें दुर्लभ है। आज यह अवसर देकर तुमने मुझे धन्य कर दिया। तुमसे बड़ा हित-चिन्तक मेरा कोई नहीं है। मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे वनमें संत-महात्माओंके दर्शनका दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। मेरे द्वारा पिताके आदेशका पालन हो रहा है और तुम्हें सुख प्राप्त हो रहा है। समाजको भरत-जैसा गुणवान् राजा प्राप्त होगा। मेरे लिये भरत प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। आज तो मेरे लिये विधाता सभी तरहसे अनुकूल हैं। मुझे केवल एक ही कष्ट है कि पिताजीको इस छोटी-सी बातके लिये इतना कष्ट हुआ।' यह कहकर श्रीरामने पिताके चरणोंमें पुनः प्रणाम किया। महाराज दशरथ श्रीरामको एकटक देखते ही रह गये। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्त्र धारा प्रवाहित होने लगी। वे मन-ही-मन भगवान् शिवसे विनती करते हुए प्रार्थना करने लगे—'हे भगवान् शिव, आप सबके प्रेरक हैं। आप श्रीरामके हृदयमें ऐसी प्रेरणा दें कि वे मेरे वचनका परित्याग कर दें और वन न जायँ। मुझे यश-अपयश, स्वर्ग-नरक कुछ भी मिले, इसकी चिन्ता नहीं है। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि श्रीराम मेरी आँखोंके सामने बने रहें।'

पिताजीको प्रेमके वशीभूत जानकर श्रीरामने कहा—'महाराज! आप चिन्ताका परित्याग कर दें। मैं माताजीसे विदा माँगकर शीघ्र वनके लिये तैयार हो जाऊँगा। मुझे कष्ट है कि आपको इतनी छोटी-सी बातके लिये इतना दुःख हुआ। संसारमें उसी पुत्रका जन्म सार्थक है, जिसके चरित्रको पिता हर्षित होकर सुनें। माता-पिता जिसे प्राणोंके समान प्रिय हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थ उसे सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। आप दुःखका परित्याग कर दें। मैं चौदह वर्षोंतक वनमें रहकर आपके आदेशका पालन करनेके बाद शीघ्र लौटकर आपके चरणोंका दर्शन करूँगा।' ऐसा कहकर श्रीराम कौसल्याके भवनकी ओर चले गये और महाराज दशरथ चाहकर भी शोकवश उनका कुछ उत्तर नहीं दे सके।

सुमित्राका उपदेश

श्रीरामके वन-गमनका समाचार अयोध्यामें जंगलमें लगी आगकी तरह फैल गया। हर्षका वातावरण क्षणमात्रमें शोकके भयानक सिन्धुमें डूब गया। अयोध्याके राजभवनमें जहाँ मंगलगीतोंके मधुर स्वर गूँज रहे थे, वहाँ उनका स्थान करुण विलापने ले लिया। माँ कौसल्याके तो दुःखका पारावार ही नहीं रहा। अयोध्यावासियोंके दुःख और व्यथामें डूबे स्वर कुटिल कैकेयीके प्रति गालियोंकी बौछार कर रहे थे। विदेहनन्दिनी जानकीने श्रीरामके बार-बार समझानेपर भी उनके अनुगमनका ही निश्चय किया।

उसी समय सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने यह दुःख-भरा समाचार सुना। वे अत्यन्त व्याकुल होकर आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहाते हुए श्रीरामकी ओर दौड़े। उन्होंने भगवान् श्रीरामके चरणोंको पकड़ लिया। उनके मनमें संदेह था कि पता नहीं श्रीराम मुझे अपने साथ ले चलेंगे या नहीं। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था कि उन्होंने देह और संसारके सारे सम्बन्धोंसे मुँह मोड़ लिया है।

श्रीरामने उन्हें समझाते हुए कहा—'भाई! तुम प्रेमके कारण अपने कर्तव्य-पथका त्याग मत करो, अयोध्यामें रहकर माता-पिताकी सेवा करो। देखो! इस समय अयोध्यामें शोकका साम्राज्य है। भरत और शत्रुघ्न भी अयोध्यासे दूर हैं। पिताजी अत्यन्त वृद्ध और मेरे वियोगके दुःखसे दुःखी हैं। यदि तुम भी अयोध्याको छोड़कर मेरे साथ वन चलोगे तो सभी लोग अनाथ हो जायँगे। भाई! इस समय गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार—सब-के-सब दुःखके सागरमें डूब रहे हैं। इस अवस्थामें तुम्हारा अयोध्यामें रहना नितान्त आवश्यक है।'

लक्ष्मणने कहा—'प्रभो! आपकी सीख अच्छी है, इसमें कोई संशय नहीं। परन्तु मैं तो बच्चा हूँ, जिसे सीखसे अधिक आपके प्रेमरूपी छाँवकी आवश्यकता है। मैंने तो अपने जीवनमें माता-पिता और गुरुके सम्बन्धोंपर कभी विचार ही नहीं किया। जहाँतक जगत्के अन्य सम्बन्धोंकी बात है तो मैंने सभी सम्बन्धोंको केवल आपके साथ ही जोड़ रखा है। धर्म और नीतिकी आवश्यकता तो उसे है, जिसे कीर्ति, सम्पत्ति और सुगति प्रिय है। हे कृपासिन्धु! मेरी तो मन, वचन और कर्मसे केवल आपमें ही प्रीति है। फिर मेरा त्याग कहाँतक उचित है?' जब श्रीरामने समझ लिया कि लक्ष्मण किसी भी अवस्थामें नहीं मानेंगे, तब उन्होंने कहा—'ठीक है, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मातासे विदा माँगकर शीघ्र वन-गमनकी तैयारी करो।'

लक्ष्मण प्रसन्नतासे खिल उठे और शीघ्र जाकर माँ सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम किया। सुमित्राजीने परिस्थितिको समझकर कहा—'लक्ष्मण! तुम्हारे तो माता-पिता केवल श्रीसीता-राम हैं। इसलिये तुम्हारा अवध वहीं है, जहाँ श्रीराम हैं। यदि श्रीसीता-राम वन जा रहे हैं तो अयोध्यामें तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। संसारमें जितने सम्बन्ध हैं, वे केवल श्रीरामके कारण ही हैं। उसी स्त्रीका पुत्रवती होना सार्थक है, जिसका पुत्र श्रीरामका भक्त है। यदि ऐसा नहीं है तो निपूती रहना ही ठीक है। पुत्र! श्रीराम केवल तुम्हारे ही भाग्यसे वन जा रहे हैं, इसका और कोई कारण नहीं है। संसारमें सभी सत्कर्मोंका फल श्रीसीता-रामके पावन चरणोंमें प्रेम ही है। इसलिये तुम राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद और मोह—सबको छोड़कर श्रीसीता-रामके चरणोंमें प्रेम करो। तुम्हारे लिये वन तो सौभाग्यका केन्द्र है, क्योंकि तुम्हारे साथ श्रीसीता-राम-जैसे माता-पिता हैं। इसलिये जिस प्रकार भी वनमें उन्हें किसी प्रकार कष्ट न हो, तुम वही करना। यही मेरा उपदेश है।' माँ सुमित्राके चरणोंमें बार-बार प्रणाम करके लक्ष्मण श्रीसीता-रामके पास लौट आये और वहाँसे तीनों पथिक महाराज दशरथके पास अन्तिम विदा लेने गये।

वन-गमन

श्रीरामने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति गरीबोंमें बाँट दी। फिर अपने पिताजीसे अन्तिम विदा लेनेके लिये सीता और लक्ष्मणसहित चले। मार्गके दोनों ओर अपार भीड़ थी। लोग सोच रहे थे कि 'श्रीराम-जैसे धर्मात्मा जब वन जा रहे हैं, तब हम लोग ही यहाँ क्यों रहें? जिस राज्यमें सत्य और धर्मके प्रतीक श्रीरामका तिरस्कार हो रहा है, वह राज्य तो वनसे भी भयावह है। इसलिये हम लोग भी अयोध्याको छोड़कर श्रीरामके साथ वन ही चलेंगे।'

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण महाराज दशरथके पास पहुँचे। महाराज दशरथकी स्थिति काफी दयनीय थी। वे बार-बार बिना जलके मछलीकी भाँति तड़प रहे थे। श्रीरामने उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके कहा—'पिताजी! मुझे आदेश दीजिये। मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये वन जा रहा हूँ। सीता और लक्ष्मण भी मेरे साथ जाना चाहते हैं।'

महाराज दशरथने कहा—'राम! मुझसे बड़ी भूल हो गयी। वरदानके अवसरपर उसके परिणामपर मैंने विचार नहीं किया। अपात्रको वर देनेसे क्या अनर्थ हो सकता है, इसका कटु अनुभव आज मुझे मिला। मेरी भूलके कारण तुम्हें कष्ट भोगना पड़ रहा है। मैं बड़ा पापी हूँ। मुझे क्षमा करो।'

श्रीरामने कहा—'महाराज! इसमें आपका कोई दोष नहीं है। मेरा वन जाना दैव-संकल्पसे है। प्रारब्धके भोगको कौन टाल सकता है? इसलिये आपका अपने-आपको दोषी ठहराना उचित नहीं है। क्योंकि इसमें किसीका भी अपराध नहीं है। वैसे भी मुझे वन जानेमें कोई कष्ट नहीं दिखायी देता है। मेरे साथ प्राणप्यारी सीता और प्राणाधिक लक्ष्मण होंगे। विश्वामित्रजीके साथ मैंने वनमें रहनेका आनन्द पा लिया है। हमें आशीर्वाद दीजिये और सहर्ष विदा कीजिये।'

विवश होकर महाराज दशरथने कहा—'वत्स! जाओ। तुम सत्यसन्ध हो, धर्मात्मा हो। तुम्हारे संकल्पको कोई बदल नहीं सकता। मेरा आशीर्वाद है कि वनमें तुम्हें कोई कष्ट न हो। वनके देवता सदा तुम्हारी रक्षा करें।'

सुमन्त्र मौन होकर यह सब देख रहे थे। एक बार कैकेयीको पुनः समझानेके उद्देश्यसे उन्होंने कहा—'देवि! आप जो कर रही हैं, वह इक्ष्वाकुकुलके लिये अत्यन्त अशोभनीय है। आप अपने स्वार्थके लिये दूसरेका अहित चाहती हैं, इसका दुष्परिणाम आपके साथ सबको भोगना पड़ेगा। अतः हठ छोड़कर आप एक बार फिर अपने निर्णयपर विचार करें।' परन्तु स्वार्थमें अन्धी कैकेयीको सुमन्त्रके हितकर वचन अच्छे नहीं लगे। वह टस-से-मस नहीं हुई।

महाराज दशरथ क्रोधित होकर बोले—'राम! अब मैं भी इस राज्यमें रहना नहीं चाहता। मैं भी तुम्हारे साथ वन चलूँगा। अब मैं इस पापिनी कैकेयीका मुख भी नहीं देखना चाहता हूँ। जनविहीन इस राज्यका सुख अब दुष्टा कैकेयी और भरत ही भोगें।'

श्रीरामने कहा—'महाराज! आप अपने पवित्र उद्देश्यमें अपयश न लें। आप सब अयोध्यामें ही रहें। भरत नीति-निपुण, परम विवेकी और धर्मात्मा हैं। वह सुखपूर्वक आप सबका पालन करेंगे। आप उनका अभिषेक करें और मुझे चौदह वर्षोंतक वनमें रहकर आप अपने आदेशका पालन करने दें।' उसके बाद कैकेयीने तीनों वन-यात्रियोंके लिये वल्कल-वस्त्र लाकर दिया। श्रीरामने अपनी पत्नी सीता तथा लक्ष्मणसहित वल्कल-वस्त्र धारण किया। सीताको वल्कल-वस्त्र देनेपर श्रीवसिष्ठजीने कैकेयीकी कटु शब्दोंमें आलोचना की।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सुमन्त्रके साथ रथपर बैठकर वनकी ओर चल पड़े। महलमें शोकका साम्राज्य छा गया। सभी अयोध्यावासी भी श्रीरामके पीछे-पीछे चलने लगे। वे कह रहे थे—'श्रीराम! तुम्हारे बिना हम अयोध्यामें नहीं रहेंगे। हमें भी अपने साथ चलनेकी आज्ञा दो।'

केवटके भाग्य

श्रीरामके बार-बार मना करनेपर भी अयोध्यावासी वापस नहीं लौट रहे थे। श्रीराम भी उनके दुःखसे दुःखी थे। प्रथम दिनका पड़ाव श्रीरामने तमसाके तटपर डालनेका आदेश सुमन्त्रको दिया। लक्ष्मणने कुशका आसन उनके आरामके लिये बिछा दिया। पूरी रात बातचीत करते बीत गयी। कुछ रात अभी शेष थी, तभी श्रीरामने सुमन्त्रको रथ ले चलनेके लिये कहा और सीता तथा लक्ष्मणके साथ उसमें बैठकर अयोध्यावासियोंको सोया हुआ छोड़कर वे चल दिये। उन्होंने सुमन्त्रजीको इस प्रकार रथ चलानेके लिये कहा, जिससे रथके पहियोंके निशान भूमिपर न पड़ें और अयोध्यावासी वहींसे लौट जायँ।

उसके बाद श्रीराम शृंगवेरपुर पहुँचे। वहाँका राजा गुहराज निषाद था। वह अत्यन्त पराक्रमी तथा श्रीरामका बचपनका मित्र था। जब उसे पता लगा कि श्रीराम शृंगवेरपुरकी सीमामें आये हैं, तब वह अपने मन्त्रियोंसहित उनसे मिलनेके लिये आया। श्रीरामने उसका खूब सम्मान किया। दोनों मित्र परस्पर गले मिले।

श्रीरामके वनवासका समाचार सुनकर गुह बहुत दुःखी हुआ। वह बोला—'श्रीराम! मेरी प्रार्थना है कि आप यहीं रहें। मैं आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने दूँगा।' श्रीरामने कहा—'मित्र! तुम बहुत उदार हो। मैं तुम्हारे आमन्त्रणके प्रति कृतज्ञ हूँ। परन्तु मैं तुम्हारे महलमें नहीं रह सकता। मुझे पिताजीके आदेशसे चौदह वर्षका समय वनमें ही बिताना है। फल-मूल ही हमारा आहार होगा। इसलिये मुझे क्षमा करो। मैं पिताजीके आदेशसे बँधा हूँ।'

श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके सान्निध्यमें गुहराजने भी वह रात वहीं बितायी और कन्द-मूल अर्पित कर भक्ति-भावसे उनका आतिथ्य सत्कार किया। श्रीराम और सीताको कुशासनपर सोते हुए देखकर गुहराजको बहुत दुःख हुआ। लक्ष्मणने अपने उपदेशसे उसे धीरज बँधाया। प्रातःकाल सन्ध्या-वन्दनसे निवृत्त होनेके बाद श्रीरामने आगेकी यात्रा पैदल करनेका निर्णय लिया। उन्होंने हाथ जोड़कर सुमन्त्रसे कहा—'तात! आप हमारे पूज्य और हमारे पिताजीके परम मित्र हैं। अब हम यहाँसे आगे पैदल ही जायँगे। आप यहाँसे रथ लेकर अयोध्या लौट जायँ। मेरी अनुपस्थितिमें मेरे माता-पिता अत्यन्त दुःखी होंगे। आप उन्हें समझाकर धैर्य दीजियेगा और उनके चरणोंमें मेरा प्रणाम कहियेगा। मेरी आपसे यही प्रार्थना है।'

सुमन्त्रको विदा करके श्रीराम गङ्गातटपर पहुँचे। उन्होंने केवटसे नाव ले आनेके लिये कहा। वह भगवान्‌का गुप्त प्रेमी और हठीला भक्त था। उसने कहा—'प्रभो! नावमें ले जानेके लिये मेरी एक शर्त है। नावमें बैठनेसे पूर्व आपको मुझसे अपना पैर धुलवाना पड़ेगा। सुना है, आपके चरणरजमें विलक्षण शक्ति है। उसका जिससे स्पर्श हो जाय, वह स्त्री बन जाती है। यदि आपके चरणरजके स्पर्शसे मेरी नौका भी स्त्री बन गयी तो मेरे लिये समस्या हो जायगी। यही मेरी जीविकाका साधन है और मैं इसीके द्वारा अपने सम्पूर्ण परिवारका पालन-पोषण करता हूँ। इसलिये यदि उस पार जाना चाहते हैं तो अपने पैरोंको धोनेका आदेश दें। यदि ऐसा न करना चाहें तो एक और उपाय है। यहाँसे थोड़ी दूर गङ्गाजीमें कमरभर जल है। आप वहाँसे आसानीसे उस पार जा सकते हैं।' श्रीरामने कहा—'भइया! तुम वही करो, जिससे तुम्हारी नाव बच जाय।'

भगवान्‌का आदेश प्राप्तकर केवट परम प्रसन्न हुआ। उसने कठौतामें जल लाकर प्रभुका चरण धोनेके बाद परिवारसहित चरणामृत लिया और भगवान्‌को उस पार ले गया। केवटके भाग्य धन्य हैं।

चित्रकूटकी अद्भुत शोभा

वनमें भ्रमण करते हुए श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें पहुँचे। महर्षि वाल्मीकिने तीनों अतिथियोंका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया और वनके कन्द-मूल लाकर उन्हें दिया।

श्रीरामने कहा—'भगवन्! मुझे रहनेके लिये कोई उपयुक्त स्थान बताइये, जहाँ मैं सीता और लक्ष्मणसहित कुछ समयतक सुखपूर्वक निवास कर सकूँ।'

वाल्मीकिजीने कहा—'प्रभो! पहले आप वह स्थान बता दें, जहाँ आप न हों। वही स्थान मैं आपको निवासके लिये बता दूँ। आप तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। सृष्टिके कण-कणमें आपका निवास है। फिर भी यदि आप मुझसे पूछ ही रहे हैं तो सुनें—यहाँसे कुछ ही दूरीपर एक स्थान है। उसका नाम चित्रकूट है। वह स्थान मन्दाकिनीके पावन तटपर स्थित है। वहाँ बारहों महीने हरियाली रहती है। कई ऋषियोंकी तपोभूमि होनेके कारण चित्रकूट परम पावन स्थान है। वहाँ कन्द-मूल और फल आसानीसे उपलब्ध हैं। हाथी, हिरन, मोर आदि वहाँ झुण्ड-के-झुण्ड दिखायी पड़ते हैं। वहाँ कई सुन्दर झरने भी हैं। वह स्थान आपके निवासके लिये सर्वोत्तम है।'

महर्षिके द्वारा चित्रकूटका वर्णन सुनकर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण परम प्रसन्न हुए। प्रातःकाल तीनों पथिक चित्रकूटके लिये चल पड़े। मार्गमें रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। नाना प्रकारके पेड़-पौधोंसे भूमि सजी-सजी-सी लग रही थी। प्रकृतिकी अद्भुत शोभाको देखते हुए तीनों पथिक चित्रकूट पहुँचे। सचमुच चित्रकूट अत्यन्त रमणीय था। वहाँ मोर नृत्य कर रहे थे और नाना प्रकारके पक्षी बोल रहे थे। फूलोंकी सुन्दर सुगन्ध हवाके साथ मिलकर वातावरणको सुगन्धित कर रही थी। वहाँ कई छोटी-छोटी नदियाँ तथा सुन्दर जल-प्रपात थे। सारे वनकी शोभा इतनी सुन्दर थी कि उसके सामने नंदनवनकी शोभा भी फीकी पड़ जाती थी।

उस वनको देखकर सीताजी परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने प्रभुसे वहीं पर्णशाला बनाकर रहनेका निवेदन किया।

श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! तुम जंगलसे मजबूत लकड़ियाँ ले आओ और रहनेके लिये सुन्दर कुटी तैयार करो।' श्रीरामका आदेश पाकर सुमित्राकुमार लक्ष्मण अनेक प्रकारके वृक्षोंकी डालियाँ काट लाये और डालियों तथा पत्तोंके द्वारा बड़ी ही सुन्दर कुटी तैयार कर दिया। वह कुटी लकड़ीकी ही दीवार बनाकर सुन्दर ढंगसे निर्मित की गयी थी और उसे ऊपरसे पर्णलताओंसे छा दिया गया था।

कुटीको तैयार देखकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'हम कुटीमें प्रवेश करनेके पूर्व वास्तु-देवताकी विधिवत् पूजा करेंगे; क्योंकि दीर्घ जीवनकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको वास्तु-शान्ति अवश्य करनी चाहिये। उसके बाद श्रीरामने स्नान करके सभी वास्तु-मन्त्रोंका पाठ किया। गायत्री आदि मन्त्रोंके जपके बाद सभी दोषोंकी शान्तिके लिये हवन किया और नवग्रह आदिको बलि प्रदान किया।

तदनन्तर सीता और लक्ष्मणके साथ श्रीरामने उस कुटीमें रहनेके लिये प्रवेश किया। चित्रकूट बड़ा ही रमणीय पर्वत था। वहाँ उत्तम तीर्थोंसे सुशोभित मन्दाकिनी नदी बह रही थी। श्रीरामके आनेका समाचार सुनकर वनवासी भील, किरात आदि उनसे मिलनेके लिये आये। उन्होंने दोनोंमें भरकर कन्द-मूल, फल आदि भेंटमें प्रभुको समर्पित किया। उन लोगोंने प्रभुसे कहा—'भगवन्! आज आपका दर्शन प्राप्त करके हम धन्य हो गये। यदि आपको कोई आवश्यकता पड़े तो आप हमें निःसंकोच आदेश दें। हम आपकी छोटी-से-छोटी सेवा करके भी अपनेको धन्य समझेंगे।' भगवान् श्रीराम वनवासियोंके छल-विहीन प्रेमको देखकर परम प्रसन्न हुए।

सुमन्त्रजीका अयोध्या लौटना

श्रीरामको पहुँचाकर जब निषादराज वापस लौटे तो देखा सुमन्त्रजी वहीं व्याकुल पड़े हैं। वे 'हा राम! हा राम!' कहते हुए लम्बी साँसें ले रहे हैं। रथके घोड़े भी घास चरना छोड़ दिये हैं और श्रीराम जिधर गये थे, उधर ही मुड़-मुड़कर देख रहे हैं।

निषादराज उनकी दशा देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने सुमन्त्रसे कहा—'सुमन्त्रजी! आप अब विषादका त्याग कर दें। आप परम विद्वान् एवं परमार्थके सच्चे ज्ञाता हैं। आप विधाताको ही वाम जानकर रथपर बैठकर अयोध्या जायँ। जब आप ही अपना धैर्य खो देंगे तो महाराज दशरथ और महारानी कौसल्याको सान्त्वना कौन देगा? उनका तो श्रीराम-वनवाससे संसार ही लुट गया है। मेरी आपसे विनती है कि आप रथको लेकर शीघ्र अयोध्या पहुँचें।' ऐसा कहकर निषादराजने बरबस सुमन्त्रजीको रथमें बैठा दिया।

भगवान् श्रीरामके वियोगसे सुमन्त्रजीका शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया था। वे चाहकर भी रथको नहीं चला पा रहे थे। घोड़े भी पीछे देखकर बार-बार हिनहिना रहे थे, मानो वे श्रीरामको लिये बिना जाना ही नहीं चाहते हैं। किसी तरह सायंकाल सुमन्त्रजी अयोध्या पहुँचे। उनकी अवस्था उस व्यापारी-जैसी थी, जो व्यापारके लिये घरसे गया हो और मूल भी हारकर घर वापस आ गया हो। सारी अयोध्यापुरी सूनी हो गयी थी। कहीं एक शब्द भी नहीं सुनायी देता था।

अयोध्याकी ऐसी दशा देखकर सुमन्त्रके मनमें बड़ा दुःख हुआ। वे सोचने लगे—'कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि श्रीरामके विरहजनित संतापसे महाराजसहित सभी लोग शोकाग्निमें दग्ध हो गये हों?'

चिन्तित सुमन्त्र जब नगरके द्वारपर पहुँचे, तब हजारों लोगोंने दौड़ते हुए रथको घेर लिया और 'श्रीराम कहाँ हैं?' यह पूछते हुए वे रथके साथ दौड़ने लगे।

उस समय सुमन्त्रने उन लोगोंसे कहा—'सज्जनो! मैं गङ्गाजीके किनारेतक ही रघुनाथके साथ गया था। वहाँसे उन्होंने मुझे लौट जानेकी आज्ञा दी। मेरे काफी अनुनय-विनयके बाद भी उन्होंने अयोध्या लौटना स्वीकार नहीं किया। अतः मैं उनसे विदा लेकर लौट आया हूँ। वे तीनों लोग वहाँसे गङ्गाके उस पार चले गये।' यह जानकर सब लोगोंकी आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं। वे सब 'हमें धिक्कार है' ऐसा कहकर लम्बी साँसें खींचने लगे और करुण क्रन्दन करने लगे।

बाजारके बीचसे निकलते हुए सुमन्त्रजीको स्त्रियोंके रोनेकी आवाज सुनायी दी। वे महलोंकी खिड़कियोंपर बैठकर श्रीरामके वियोगसे संतप्त होकर विलाप कर रही थीं। राजमार्गपर पहुँचकर सुमन्त्रने अपना मुख ढँक लिया। वे रथ लेकर सीधे महाराज दशरथके भवनकी ओर गये। उन्होंने देखा कि महाराज पुत्र-शोकमें मलिन और आतुर हो रहे हैं। सुमन्त्रजी महाराजके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। महाराज दशरथने कहा—'सुमन्त्र! तुम श्रीरामका सन्देश बताओ। क्या वे तुम्हारे विनय करनेपर भी नहीं माने और वन चले गये? क्या तुम सुकुमारी सीताको भी नहीं लौटा पाये? मेरा भाग्य ही खोटा है। किसीका कोई दोष नहीं है।'

सुमन्त्रने कहा—'महाराज! धर्मात्मा श्रीरामने आपके चरणोंमें प्रणाम कहा है। उन्होंने कहा है कि मैं वनवासकी अवधि पूरी करके महाराजका दर्शन करूँगा। वे मेरी चिन्ता न करें।'

श्रीरामका संदेश सुनकर महाराज दशरथने कहा—'सुमन्त्र! मुझे रामके पास ले चलो, नहीं तो मेरे प्राण निकलना ही चाहते हैं।' इस तरह श्रीरामके वियोगमें 'हा राम! हा राम!' कहते हुए महाराज दशरथने अपना प्राण त्याग दिया।